विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१४ जुलाई—१९९५ अंक—७

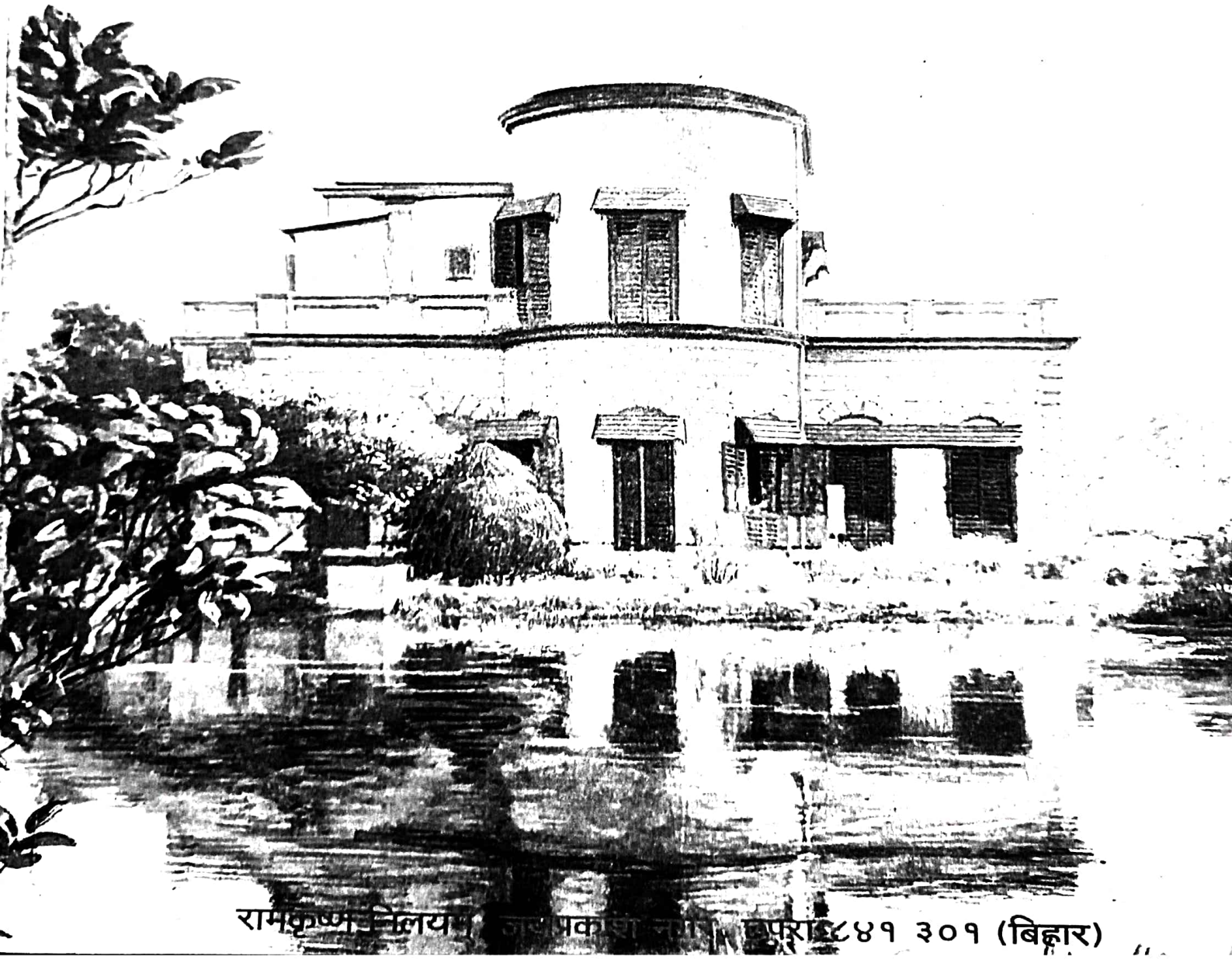

रामकृष्ण निलय [illegible] प्रकाशन [illegible] पुरा ८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री पालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)
१२३. श्रीमती चन्द्रिका कालरा (बम्बई)
१२४ श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)
१२५. श्रीमती छवि सिंह, गाजीपुर (उ० प्र०)
१२६. विवेकानन्द युवा महामंडल, इन्दौर (म० प्र०)
१२७. श्री आनन्द यश चोपड़ा, अलॉंग(अरुणाचल प्रदेश)
१२८. सुश्री सेजल क० मान्डवीय, जूनागढ़ (गुजरात)
१३०. श्री विजय कुमार रामसेवक गुप्ता, नागपुर
१३१. श्री जी. के. दीक्षित, वरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन—लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स - मंडेरदिशा (आ०)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल - लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय —लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल —बड़ोदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम जोधपुर (राजस्थान)
१४२. महावीर बाल वाचनालय—चन्दावल नगर(राज०)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन —नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र —एन० सी० हिल्स
१४९. श्री बी० बी० शेरपा - लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल - नगाँव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी — इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा —काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. सुश्री एस. पी. त्रिवेदी — राजकोट (गुजरात)
१५ श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८ श्री अशोक कौशिक—मालवीय नगर, नयी दिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)

इस अंक में

		पृष्ट
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्रीरामकृष्ण स्तोत्रम्	स्वामी विवेकानन्द	२
३ मानवीय मूल्य और कर्मकौशल	स्वामी वन्दनानन्द	३
४. भगवत् सान्निध्य का अभ्यास	स्वामी यतीश्वरानन्द	७
५ महा उदय	मोहन सिंह मनराल	११
६. साधकों के प्रश्न : स्वामी ब्रह्मेशानन्द के उत्तर		१४
७. श्रीरामकृष्ण भावान्दोलन की विशेषताएँ	स्वामी सोमेश्वरानन्द	२०
८. देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	२४
९. प्रेम धन	यशपाल जैन	२८
१०, वेद	ब्रह्मचारी मोक्ष चैतन्य	२९

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१४ जुलाई—१९९५ अंक—७

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा – ८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि
आजीवन सदस्य— ५०० रु०
वार्षिक— ४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से— ५० रु०
एक प्रति— ४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जो गुरु के बारे में मनुष्य-बुद्धि रखता है उसके साधन-भजन का क्या फल होगा ? गुरु के बारे में मनुष्य-बोध नहीं रखना चाहिए। इष्टदर्शन होने के पहले शिष्य को प्रथम गुरु के दर्शन होते हैं। फिर ये गुरु ही शिष्य को इष्टदेव के दर्शन करा देते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्टरूप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्टदेव को अभिन्न, एकरूप देखता है। इस अवस्था में शिष्य जो वर माँगता है, गुरु उसे वही देते हैं। यहाँ तक कि गुरुदेव उसे सर्वोच्च निर्वाण की अवस्था तक दे सकते हैं। या अगर शिष्य चाहे तो वह उपास्य-उपासकरूपी भाव-सम्बन्ध को बनाए रखकर द्वैत अवस्था में भी रह सकता है। वह जैसा चाहे, गुरु उसके लिए वैसा ही कर देते हैं।

(२)

जिन-जिन के निकट कोई शिक्षा प्राप्त होती हो उन सभी को गुरु न कहकर एक निर्दिष्ट व्यक्ति को ही गुरु कहने की क्या आवश्यकता है ? किसी अनजान जगह जाना हो तो जो रास्ता जानता है ऐसे किसी एक व्यक्ति के निर्देशानुसार ही जाना चाहिए। अनेक लोगों से रास्ता पूछते रहने पर गड़बड़ हो जाती है। वैसे ही ईश्वर के निकट जाना हो तो एक अनुभवी गुरु के निर्देशानुसार चलना चाहिए। इसीलिए एक गुरु का प्रयोजन है।

(३)

सच्चिदानन्द-सागर में डूब जाओ। कामक्रोध-रूपी मगरों से मत डरो; शरीर पर विवेक-वैराग्यरूपी हल्दी लगाकर डुबकी लगाओ तो ये मगर तुम्हारे पास नहीं फटकेंगे।

श्रीरामकृष्ण स्तोत्रम्

—स्वामी विवेकानन्द

नरदेव देव जय जय नरदेव
शक्तिसमुद्र समुत्थ तरंगं
दर्शित प्रेम विजृम्भित रंगम्।
संशय-राक्षस नाश महास्त्रं
यामि गुरुं शरणं भववैद्यम्
नरदेव देव जय जय नरदेव ॥१॥

अद्वय तत्व समाहित चित्तं
प्रोज्ज्वल भक्ति पटावृत वृत्तम्।
कर्म्म कलेवरमद्भुत चेष्टम्
यामि गुरुं शरणं भव वैद्यम्
नरदेव देव जय जय नरदेव ॥२॥

भावार्थ– हे नरदेव ! तुम्हारी जय हो ! जो शक्तिरूपी समुद्र से उत्थित तरंग स्वरूप हैं, जिन्होंने प्रेम की तरह-तरह की लीला दिखायी है, जो सन्देहरूपी राक्षस के विनाश हेतु महा अस्त्रस्वरूप हैं, उन्हीं संसाररूपी रोग के वैद्य गुरु का आश्रय मैं लेता हूँ। हे नरदेव देव ! तुम्हारी जय हो ॥ ॥

एक अद्वितीय (ब्रह्म) तत्त्व में जिनका चित्त समाहित है, जिनका चरित्र अति श्रेष्ठ भक्तिरूपी वस्त्र से आच्छादित है (अर्थात् जिनके भीतर ज्ञान और बाहर भक्ति है), जिनकी देह कर्म्ममय है, अर्थात् जो देह के द्वारा लगातार लोगों के हित के लिए कर्म्म कर रहे हैं, जिनका कार्यकलाप अति अद्भुत है, उन्हीं संसाररूपी रोग के वैद्य गुरु का मैं आश्रय लेता हूँ : हे नरदेव देव ! तुम्हारी जय हो ॥२॥

मानवीय मूल्य और कर्म कौशल

—स्वामी वन्दनानन्द
बेलुड़ मठ

किसी भी मनुष्य में तीन बातें निहित होती हैं—शारीरिक शक्ति अर्थात् शरीर और उसकी शक्ति, मानसिक शक्ति अर्थात् मन और उसकी शक्ति तथा बौद्धिक शक्ति अर्थात् बुद्धि और उसकी शक्ति। ये तीनों शक्तियाँ प्रत्येक व्यक्ति में कुछ इस प्रकार उपलब्ध रहनी चाहिए कि हमारे जीवन में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए उनका उपयोग किया जा सके। ये चुनौतियाँ, विशेषकर उत्पादन के क्षेत्र में, जहाँ गुणवत्ता और मात्रा दोनों पर जोर दिया जाता है, अक्सर हमारे सामने उपस्थित होती रहती हैं। ऐसे क्षेत्र में बेहतर से बेहतर उत्पादन के लिए उसमें लगे प्रत्येक व्यक्ति को काम की ओर प्रेरित रखना पड़ता है। और हम यह भी जानते हैं कि केवल अच्छी मजदूरी, ढेर सारी सुविधायें मनुष्य के अन्तर्मन में बेहतर उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता के लिए आवश्यक रूप में बेहतर प्रेरणा का काम नहीं करतीं। उन्हें इस दिशा में जो प्रेरित करता है उसी को हम कहते हैं मानवीय मूल्य।

मनुष्य का अन्तर्मन क्या है? हम अक्सर यह कहते हैं कि व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि का समूह है। फिर हममें अहम् भाव है। अपनी उपलब्धियों पर हमारे भीतर बैठा अहम् गर्व करता है और अपनी गलतियों से हमारे अन्दर बड़ी चोट पहुँचती है। भारतीय दर्शन हमारी अति प्राचीन विचार-धारा, वेद-वेदान्त के समय से सतत प्रवाहमान ऋषियों-मुनियों की आध्यात्मिक परम्परा यह मानती आयी है कि इस सबके भीतर और एक सत्ता है जिसे हम आत्मा कहते हैं। इस आत्मा को परिभाषित करना आसान नहीं है। आत्मा वह है जो व्यक्ति के जीवन और कार्यों में सार्वाधिक महत्वपूर्ण है और सर्वश्रेष्ठ है, जो सर्वाधिक शक्तिशाली है, हमारी सारी शक्ति का स्रोत है। कुछ ऐसे सोचा जाय! क्या हमारा हाथ सर्वोच्च है? नहीं। जैसा मानसिक निर्देश देते हैं उसी के अनुसार काम करता है हमारा हाथ। तो क्या हमारा मन सर्वशक्तिमान है? नहीं। मानसिक निर्देश, जड़ शरीर के ऊपर मन का आदेश तभी संभव है जब हमारा मन अच्छी तरह प्रशिक्षित हो, अच्छी तरह नियंत्रित हो, अन्यथा वह तो भटकता है और हाथ को गलत निर्देश भी दे सकता है, देता भी है। हमारा अनियंत्रित मन, अप्रशिक्षित मन, अअनुशासित मन हमारे हाथ और पैर को उचित निर्देश दे ही नहीं सकता और इसलिए हमारा काम फूहड़ होता है, बेढंगा होता है। मन को प्रशिक्षित करने के लिए, मन को अनुशासित करने के लिए, मन को उचित प्रेरणा देने के लिए बुद्धि का समुचित विकास आवश्यक है। मन से भी महत्वपूर्ण है यह बुद्धि। क्योंकि एक व्यक्ति में बुद्धि का जितना विकास होता है उतना ही कुशल कहलाता है वह। जो बुद्धिमान नहीं है वह अकुशल, अनाड़ी कहलाता है। अतः व्यक्ति का कर्म कौशल बुद्धि विकास पर निर्भर है। इसीलिए कोई कुशल कामगार होता है और कोई अकुशल। एक बुद्धिमान व्यक्ति निरन्तर आगे बढ़ता रह सकता है।

तो बुद्धि मन को रास्ता बता सकती है और मन शरीर हाथ, पैर का मार्गदर्शन कर सकता है। जैसे हम मशीन के साथ काम करते हैं। मशीन हमारी कोई परवाह नहीं करती. वह चलती रहती है। अगर हम सचेत न रहें तो हमें चोट पहुँच सकती है, कोई बड़ी दुर्घटना हो सकती है। इसलिए हमें सचेत रहना पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बुद्धि जितनी सावधान रह सकती है मन उतना सावधान नहीं रह सकता। बुद्धि मन से अधिक सचेत. अधिक सावधान हो सकती हैं। इसलिए व्यक्ति में उच्च बुद्धि बहुत ही आवश्यक है।

तो क्या बुद्धि ही व्यक्ति को महान बनाती है? नहीं। शरीर, मन और बुद्धि के भीतर एक और शक्ति है—आत्मा की शक्ति जो हमें महान बनाती है। आत्मशक्ति यानी मनुष्य में अन्तर्निहित आध्यात्मिक सत्ता जो सर्वव्यापी है, सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप और आनन्द स्वरूप है। उस आध्यात्मिक सत्ता के ऊपर आधार लेकर ही कोई भी व्यक्ति ठीक-ठीक आगे बढ़ सकता है।

क्या है यह आध्यात्मिक शक्ति या सत्ता? जब कोई शारीरिक रूप से या बुद्धि से अत्यन्त शक्तिशाली न भी हो पर अपने अन्य गुणों के बल पर, दक्षता और योग्यता के बल पर, किसी अत्यन्त ऊँचे ओहदे पर, शिखर पर पहुँचता है तो हम उसकी प्रशंसा करते हैं। कैसे एक साधारण व्यक्ति, वही दो हाथ, दो पैर रखने वाला व्यक्ति इतना महान और इतना प्रतापी, इतना वैभवशाली बन गया है। उस व्यक्ति में वह क्या है जिसने इतना विख्यात कर दिया है कि लोग उसके सामने नत-मस्तक हो जाते हैं? यही सभी व्यक्ति में अन्तर्भूत आध्यात्मिक शक्ति है जो किसी व्यक्ति विशेष में व्यक्त हो जाती है और हम नतमस्तक होते हैं। शारीरिक रूप से बलशाली या बुद्धिशक्ति सम्पन्न व्यक्ति भी आध्यात्मिक रूप से महान व्यक्ति के समक्ष सिर नवा देता है। वह महान व्यक्ति संसार से विदा हो जाता है। शरीर-मन-बुद्धि समूह निष्प्राण पड़ा है। वही शरीर है, वही हाथ है, वही पाँव है, यहाँ तक कि चेहरे का भाव भी वही है। फिर भी हम ज्यादा देर तक नहीं रखना चाहते हैं उसे। तो क्या था उसमें जिसने उसे महान बनाया था? जरूर इस शरीर से परे, मन से परे, बुद्धि से परे कोई चीज है जो स्थायी है जो सम्पूर्ण जीवित व्यक्ति को विकसित करती है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अवश्य है जो अत्यन्त शक्तिशाली है, किन्तु हम जिसे देख नहीं पाते। वह अदृष्ट है किन्तु हमारे विचारों और कल्पनाओं से परे नहीं। क्या यह शिक्षा है? नहीं। तब यह क्या है? आत्मशक्ति। आत्मा को हम भले नहीं देखें पर आत्मा की शक्ति सत्य, शिव और सुन्दर जैसे मूल्यों द्वारा प्रकाशित होती है। इस आत्मतत्व को आधार बनाकर हर व्यक्ति में प्रकाश पाने वाले ये मूल्य या शक्तियाँ ही व्यक्ति को महान बनाती हैं, बुद्धि का मालिक बनकर। पर सत्य क्या है? जो शाश्वत, सदा, सर्वदा है वही सत्य है। सरल भाव से समझना हो तो सत्य का मतलब केवल यह नहीं कि हम सच बोलते हैं। सत्य का मतलब है कि हम स्वयं के प्रति सच्चे हैं या नहीं। मन और वाणी में सामंजस्य रखते हैं या नहीं। अपने विचारों में ईमानदार हैं या नहीं, अपने कर्म में ईमानदार हैं या नहीं? ईमानदारी की बात करना आसान है, किन्तु किसी व्यक्ति में ईमानदारी का भाव उत्पन्न करना बड़ा कठिन है क्योंकि साधारण व्यक्ति में बेईमान बनने की प्रवृत्ति भी विद्यमान रहती है अज्ञता वश या मोह वश। पर हाँ, कम से कम इतना अवश्य किया जा सकता है कि कोई बेईमान होने पर लज्जित महसूस करे। इससे ऊपर उठने का रास्ता खुलता है। इसलिए कर्मकौशल के लिए

आवश्यक है कि हमारे मन में अपने प्रति ईमानदार बने रहने का भाव उत्पन्न हो अर्थात् हम यह जानें कि हमारा विचार सत्य है और हमारा कर्म उस विचार के अनुकूल है। अपनी अन्तर्निहित आत्म सत्ता पर आधारित यह भाव हमें प्रचण्ड शक्ति और साहस प्रदान करता है। सत्य के साथ शिव उपलब्ध होता है। शिव का अर्थ है मंगल, श्रेष्ठता, अच्छाई। विचार की शुद्धता और उसे कर्म में ढालने की प्रयत्नशीलता हमें श्रेष्ठता की ओर ले जाती है। जब हम ईमानदार कोशिश से किसी रचनात्मक कार्य में, जैसे उत्पादन में जुड़ते हैं तो उसका उत्तम फल हमें प्राप्त होता है। और यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि हमारे अन्दर इस बात की सच्ची भावना हो कि हम अच्छे हैं, मंगलमय हैं अतः हमें अच्छा होना ही पड़ेगा, हमें गुणवत्ता बनाये रखने की ओर सतत् जागरूक रहना पड़ेगा। तभी हमारी सच्चाई इस श्रेष्ठता के रूप में प्रकाश पाती है।

तीसरा मूल्य है सौन्दर्य या सुन्दरता जो सत्य और शिव के आचरण से उपलब्ध होता है। यह मूल्य भी हमारे बहुत गहरे अन्दर से आता है। प्रत्येक कलाकार, चित्रकार, रचनाकर इस प्रयत्न में रहता है कि उसकी कृति सुन्दर से सुन्दर बने। एक संगीतकार सतत् अपने संगीत को निखारने में लगा रहता है। और यह सौन्दर्य हर काम में लाया जा सकता है। सौन्दर्य से गुणवत्ता निखरती है। जिस व्यक्ति का हर काम या व्यहार इस मूल्य से प्रेरित रहता है हम उसे सुन्दर व्यक्ति कहते हैं। बाहरी सुन्दरता से बढ़कर होती है यह भीतर की सुन्दरता। किसी भी काम में सुन्दरता कर्मकुशलता की परिचायक होती है। इसलिए जो सत्य और शिव का आचरण करता वह इस बात के लिए भी प्रेरित रहता है कि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु या कृतियाँ लोगों को अच्छी से अच्छी लगें। ऐसे व्यक्ति की कृतियों से मुग्ध होकर हम उस व्यक्ति के समीप आने को आतुर होते हैं। यह मूल्य-सौन्दर्य का भाव जिस व्यक्ति में सर्वाधिक प्रकाशित होता है उनकी निकटता पाकर अपना जीवन भी धन्य मान लेता है। इसलिए हमें गुणवत्ता बनाये रखने की ओर निरन्तर जागरूक रहना पड़ता है तभी कर्म-कुशलता शिखर पर पहुँचती है।

हर व्यक्ति में शरीरिक बल, मनोबल और बुद्धिबल के ऊपर ये तीन मूल्य कुछ न कुछ परिमाण में विद्यमान रहते हैं जिनसे दया, प्रेम मानव सेवा का भाव, श्रद्धा आदि अन्य मानवीय मूल्य भी आ जाते हैं, क्योंकि सभी मानवीय मूल्यों के मूल में ये ही तीन मूल्य—"सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्" विद्यमान रहते हैं। किसी व्यक्ति के गहरे अन्दर में ये तीनों मूल्य अधिक मात्रा में जब जुड़ जाते हैं तो उसमें सृजनात्मक दक्षता प्रकट होती है, कर्म कुशलता निखरती जाती है। और जिनसे यह मूल्य पूर्ण रूपेण प्रकट होता है वह अमर आनन्द का भागी बन जाता है। हम उन्हीं को महान कहकर पूजते हैं जो अपने व्यवहार से हमें मार्ग दिखाकर महान बनने में सहायता करते हैं।

जिस संस्थान में, समूह में, गाँव में या देश में इन मूल्यों को अपने जीवन और कर्म का आधार बनाने वाले व्यक्ति अधिक होते हैं चाहे वे कोई भी पद या स्तर के हों, तब केवल वे व्यक्ति महान नहीं बनते बल्कि सम्पूर्ण समूह, गाँव, जाति, और देश महान बन जाता है और बढ़ चलता है समृद्धि के पथ पर आनन्द के मोती बटोरने लिए जो केवल धन से प्राप्त नहीं होता।

(रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के ट्रस्टी एवं 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका के पूर्व सम्पादक स्वामी वन्दनानन्दजी के राँची स्थित मेकन में अँग्रेजी में दिए गये प्रवचन का सारांश।)

भगवद् सान्निध्य का अभ्यास—(१)

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

मन को उच्चस्तर पर बनाये रखना

आध्यात्मिक जीवन के लिए सुबह और सायंकाल एक दो घण्टे ध्यान में बिताना पर्याप्त नहीं है। कुछ मात्रा में ध्यान का मनोभाव सारे दिन बनाये रखना चाहिए। जीवन के दैनन्दिन कर्त्तव्यों में लगे रहते हुए भी भगवच्चिन्तन का एक अन्तर्प्रवाह बना रहना चाहिए। यह अपवित्र विचारों को उठने से रोकता है और ध्यान में बैठने पर एकाग्रता के लिए बहुत सहायक होता है। दैनन्दिन ध्यान के साथ भगवद्सान्निध्य का अभ्यास किया जाना चाहिए और यदि ठीक से किया जाय तो वह अपने आप में एक तीव्र साधना है। वह एकाग्रता रहित कई घटों तक किये गये ध्यान के बराबर होता है।

भगवद् गीता के द्वितीय अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से स्थितप्रज्ञ के लक्षण पूछते हैं।[1] इस पुस्तक तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों में मुक्त पुरुष के लक्षणों को बार-बार गिनाये जाने का क्या उद्देश्य है? गीता के द्वितीय अध्याय पर अपने भाष्य में शंकराचार्य इसकी व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि मुक्त पुरुष के लक्षणों को साधक के द्वारा आचरित गुण अथवा साधनाएँ समझना चाहिए। संघर्षरत जीव के लिए जो कष्टसाध्य सद्भावना है, वही सिद्ध पुरुष के आभूषण हैं, अलंकार हैं। एक सिद्ध महापुरुष के चरित्र और व्यवहार की जानकारी का यही महत्त्व है।

इन सभी निर्देशों में ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि मन को सदा उच्चस्तर पर बनाये रखना चाहिए। मन को कभी भी नीचे नहीं आने देना चाहिए। परम आदर्श को भूलकर सांसारिक मामलों में डूबने से ऐसा होता है। कर्म और कर्त्तव्य अपरिहार्य हैं, अतः उन्हें परमात्मा के साथ संपर्क बनाये रखने के उपायों में रूपान्तरित करना चाहिए। ऐसा किए बिना सायं-प्रातः किया थोड़ा सा ध्यान-जप अधिक लाभकर नहीं होता। हमें सदा भगवान् को याद रखना चाहिए और ऐसा करने का एकमात्र उपाय हम जो कुछ करते या सोचते हैं, उसे परमात्मा से जोड़ना है। मन को खाली रहने देना अथवा भूतकाल का चिन्तन करते रहना बहुत हानिकारक है। यदि मन को खाली रहने देंगे तो वह व्यर्थ चिन्तन करता रहेगा और भूतकालीन स्मृतियों में डूबा रहेगा। ये किसी के लिए लाभदायक नहीं होते।

यदि कभी तुम्हारी ऐसी मनः स्थिति हो तो तत्काल कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने लगो, अथवा किसी को निःस्वार्थ सेवा करने लगो। तुम देखोगे कि यह मनोदशा शीघ्र दूर हो जायेगी। अन्यथा यदि तुम केवल बैठे-बैठे भूतकाल की स्मृतियों में खोये रहोगे, तो समय तो बर्बाद होगा ही, तुम स्वनिर्मित बाधाएँ पैदा करोगे। धर्म-जीवन में गहन अध्ययन के महत्त्व पर जितना बल दिया जाय उतना कम है। अधिकांश साधकों के लिए ये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यह मानना, कि स्वाध्याय तुम्हारे लिए अब आवश्यक नहीं है, और तुम ध्यान से ही सब कुछ पा जाओगे, निरा अभिमान है। निश्चय ही ध्यान उच्चतर चक्रों को को विकसित करने में सहायक होता है, लेकिन

प्राण और मन की सारी ऊर्जा को इन केन्द्रों से प्रवाहित नहीं किया जा सकता। ऊर्जा बड़ी मात्रा में निम्नतर चक्रों में बची रहती है, और इसे यदि किसी सृजनात्मक कर्म के द्वारा प्रवाहित न किया जा सके, तो इससे मन अनावश्यक रूप से विक्षिप्त हो जाता है। स्वाध्याय और निःस्वार्थ काम को एक प्रकार की साधना समझना चाहिए। उन्हें आध्यात्मिक जीवन की किसी भी सर्वतोमुखी योजना का अंग होना चाहिए। उन्हें अनावश्यक या व्यर्थ समझकर छोड़ नहीं देना चाहिए। अन्य समय कुछ रचनात्मक कार्य कर सकने पर तुम जीवन में नीरसता का अनुभव नहीं करोगे। अन्यथा, विशेषकर प्रारंभिक साधक के लिए, स्वयं आध्यात्मिक जीवन ही असहनीय रूप से नीरस हो जाता है।

हमारे आध्यात्मिक जीवन का मूल्यांकन दिन भर में हमारे मन में भगवदीय विचार किस प्रकार और कितनी बार उठते हैं, इससे किया जाना चाहिये। दिन में एक दो बार ध्यान के लिए घंटे भर के लिए बैठना पर्याप्त नहीं है। हमारे दैनन्दिन कर्त्तव्य कर्मों के बीच भगवदीय विचारों को निरंतर उठते रहना चाहिए। यही वास्तविक आध्यात्मिक जीवन है। अन्यथा तुम एक दो घंटे के लिए ही आध्यात्मिक रहते हो। अन्य समय तुम किसी सामान्य सांसारिक व्यक्ति से भिन्न नहीं रहते।

लेकिन निश्चय ही इसके लिए दीर्घकाल तक प्रयत्नपूर्वक संघर्ष करना पड़ता है। अप्रिय परिस्थितियों एवं व्यक्तियों से बचा नहीं जा सकता और यह हमारे मन को विक्षिप्त करता है। अतः उन्हें भी परमात्मा के साथ जोड़ना सीखना चाहिए। परमात्मा की सृष्टि की इस विशाल रचना में तथाकथित दुष्ट लोगों और दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के लिए कोई स्थान निर्धारित करो और तब तुम पाओगे कि अन्ततः लोग दुष्ट दिखाई नहीं देते और परिस्थितियाँ भी इतनी दुर्भाग्यपूर्ण नहीं लगतीं। निरन्तर अभ्यास के द्वारा तुम अपने अहंकार को पीछे फेंकने में, परमात्मा को सामने लाने में और उन्हें अपने वैचारिक जीवन को प्रभावित करने देने में सफल होओगे। अपने क्षुद्र अहंकार से चिपके रहना ही आध्यात्मिक जीवन की प्रमुख समस्या है। इसे कम किया जाना चाहिए। अपने प्रति तुम्हारा दृष्टिकोण ही तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति की संभवतः सबसे बड़ी बाधा है—न कि अन्य व्यक्ति और परिस्थितियाँ।

निरंतर अभ्यास

अभ्यास के द्वारा हाथों से कर्म करते हुए भी तुम भगवन्नाम का जप अथवा किसी स्तोत्र या प्रार्थना का पाठ तथा भगवत्स्मरण कर सकोगे। इस तरह तुम कर्म को उपासना में परिणत कर सकोगे तथा परमात्मा के निकट आ सकोगे।

निश्चित समय पर ध्यान और प्रार्थना करना आध्यात्मिक प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। कर्म के समय भी प्रार्थना और ध्यान का मनोभाव बनाये रखना चाहिए। तभी समर्पण के भाव से किये जाने वाला कर्म आध्यात्मिक साधना में परिणत हो पाता है, तथा प्रार्थना और ध्यान की तरह ही प्रभावशाली हो पाता है। एक हिन्दू स्तोत्र में कहा गया है: "मैं जो कुछ करता हूँ, प्रभु, सभी तुम्हारी आराधना है। यद्यत् कर्म करोमि तत्तद् शंभो त्वाराधनम्।"

अपने नियमित ध्यान और प्रार्थना के विषय में बहुत सतर्क रहो, लेकिन सारे दिन भी कुछ मात्रा में भगवच्चिन्तन को अपने साथ बनाये रखो। अपने खाली समय को भगवन्नाम और चिन्तन द्वारा, जिस मात्रा में तुम पूर्ण करने में

समर्थ होंगे उतनी ही मात्रा में तुममें एक महान् आध्यात्मिक रूपान्तरण होगा, और तुम अपने हृदय में भगवत् सत्ता, प्रेम और आनन्द का अधिकाधिक अनुभव करने लगोगे।

आध्यात्मिक पथ के पथिकों के जीवन में अनिवार्य रूप से आनेवाले उतार चढ़ावों से चिन्तित मत होओ।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि समुद्र के निकट पहुँचने पर ही नदी में ज्वार का प्रभाव दिखाई देता है। तुम्हें अपने मनोभावों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मन में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। लेकिन निष्ठापूर्वक जप और ध्यान करते रहने पर तथा उस एक अपरिवर्तनशील परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव करने पर तुम्हें अधिक स्थिरता प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त तुम्हारी चिन्तन और आत्म निरीक्षण की शक्ति में भी वृद्धि होगी।

थोड़े जप-ध्यान के बाद अपने कर्त्तव्यों को करो, लेकिन कुछ मात्रा में यह भाव बनाये रखो कि अनन्त परमात्मा तुम्हारी आत्मा की आत्मा के रूप में, तुम्हारे हृदय में, और उसी तरह सभी प्राणियों में विद्यमान है। यह भी सोचो कि तुम तथा अन्य सभी उसमें अवस्थित हैं।

इस तरह बढ़ते रहो, तब तुम अपनी आत्मा और परमात्मा के मिलन केन्द्र, हृदय-चक्र, का अधिकाधिक अनुभव कर सकोगे। यह कालान्तर में तुम्हें महान शारीरिक और मानसिक स्थिरता प्रदान करेगा।

परमात्मा के साथ आन्तरिक संपर्क

प्रत्येक साधक को निरन्तर अभ्यास के लिए चेतना का एक निश्चित केन्द्र, एक इष्ट देवता और एक मंत्र होना चाहिए। इसके साथ ही, नाविक की कुतुबनुमा की घड़ी जिस प्रकार सदा उत्तर दिशा की ओर इंगित करती रहती है, उसी प्रकार हमारे मन को सदा चेतना के केन्द्र में इष्ट के रूप, तथा मन्त्र में लगे रहना चाहिए। प्रत्येक साधक का एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना का केन्द्र होना चाहिए। उसे सदा अपने चेतना के केन्द्र में रहना सीख लेना चाहिए। अपने मन को प्रातःकालीन ध्यान के समय वहाँ एकाग्र करने में सफल होने पर वह यह आसानी से कर सकता है। अपने वास्तविक "अहं" की वहाँ पर स्थिति अनुभव करने में समर्थ होने पर उसके लिए अपनी व्यक्तिगत चेतना को इस केन्द्रीय चेतना के साथ संयुक्त करना आसान हो जाता है। साधक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह चेतना के अपने केन्द्र में सदा बद्धमूल है। यदि हमारा मन इस केन्द्रीय चेतना से उखड़ जाये; तो वह अन्य स्थानों में जड़ें जमाने लगता है, जो बहुत अस्थिरता पैदा करता है। ज्ञानमार्ग का अनुसरण करने वाले सतत् आत्मविश्लेषण द्वारा सदा केन्द्रीय "अहं" चेतना को पकड़े रखने का प्रयत्न करते हैं। वे अधिक सन्तुलित रहते हैं, तथा दीर्घ आध्यात्मिक शुष्कता का अनुभव नहीं करते। भक्त की बात भिन्न है। वह अपने इष्ट देवता के रूप को अधिक महत्त्व देता है और जब वह उन्हें स्मरण नहीं कर पाता तो वह दुःखित होता है। भक्ति-मार्ग का अनुसरण करने वालों को अपनी व्यक्तिगत चेतना को इष्ट की चेतना के साथ संयुक्त करना सीखना चाहिए। जब इष्ट की जीवनसत्ता की अनुभूति नहीं होती तब तुम्हारी अपनी चेतना का भी आधार नहीं रहता, और तुम्हें ऐसा लगता है मानो तुम बिना किसी सहारे के हवा में तैर रहे हो। कभी-कभी साधक ध्यान के समय इष्ट के रूप को बहुत स्पष्ट रूप से देखने में सफल होता है, लेकिन वह पाता है कि वह उसके साथ ठीक से सम्पर्क स्थापित नहीं कर पा रहा है। वह अपनी चेतना को इष्ट की चेतना

के साथ संयुक्त नहीं कर पा रहा है। इससे गहरा विक्षेप होता है, तथा प्रायः दीर्घकाल व्यापी अस्थिरता हो जाती है। कई दिनों तक साधक एक प्रकार की भावनात्मक रिक्तता में रहता है।

यदि कुछ समय के लिए तुम अपने इस देवता के साथ सम्पर्क का अभाव अनुभव करो, तो कृपया निराश न होओ। प्रार्थना करते रहो तथा अपना स्वाध्याय और साधना करते रहो। आन्तरिक तीव्रता के साथ प्रतीक्षा करो; आंतरिक सम्पर्क पुनः स्थापित हो जायेगा, और वह भी पहले से अधिक गहरा।

वस्तुतः हमारी आत्माएँ सदा परमात्मा के साथ संयुक्त रहती हैं, लेकिन अचेतन के राज्य में रहने के कारण हम उसका अनुभव नहीं कर पाते। अपवित्रताएँ, आन्तरिक वासनाएँ, और कल्पनाएं हमें चेतना के उच्चतर स्तर पर उठने नहीं देंगी; जहाँ हम परमात्मा का सम्पर्क आसानी से अनुभव कर सकें। अतः चित्त शुद्धि को आध्यात्मिक जीवन में इतना अधिक महत्व दिया गया है।

आधुनिक लोगों की मुख्य समस्या यह है कि वे अपने इष्ट के प्रति प्रेम का अनुभव नहीं करते, और उनके साथ ठीक सम्बन्ध स्थापित करने में सफल नहीं होते। परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम होने पर, वह कर्म के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। सभी प्रकार के कर्म साधक की परमात्मा के प्रति श्रद्धा को अभिव्यक्त करने लगते हैं।

अतिश्रम बाधक है

कुछ लोग हैं जो स्वयं की रक्षा करना जाने बिना जगत का उद्धार करना चाहते हैं। अपनी समस्याएं सुलझाए बिना तुम जगत् की समस्याओं को नहीं सुलझा सकते। अधिकांश कट्टर सुधारकों के साथ यही समस्या है, वे वस्तुतः अपने विषय में कुछ नहीं जानते, पर फिर भी दूसरों को सुधारना चाहते हैं। हमारा ऐसा विकृत स्वभाव है कि हम कर्म को इतना बढ़ाते जाते हैं कि अन्त में वह हमारी समस्त शक्ति और हमारे समग्र मन को सोख लेता है। हमें अपने कर्त्तव्यों को व्यर्थ ही बढ़ाना नहीं चाहिए! हमें कर्म के पीछे भागना नहीं चाहिए। हमें कुछ मात्रा में अवकाश भी चाहिए। हमें अपनी साधनाओं तथा भक्ति के कार्यों के लिए सदा समय निकालना चाहिये।

अतिश्रम आध्यात्मिक जीवन की एक बाधा है। बार-बार लोगों में कर्म को बढ़ाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, विशेषकर चंचलता और लक्ष्यहीन आवेग युक्त पाश्चात्य देशों में। श्रीरामकृष्ण कुछ लोगों को, कर्म-वृद्धि को, कर्त्तव्यों को बढ़ाने की वृत्ति को सदा निरुत्साहित किया करते थे। यह एक असन्तुलित मानसिकता है। यह मन की चंचलता का लक्षण है और पलायन का प्रयास है। यह प्रशंसनीय नहीं है। कोई भी मानव खाली समय का सदुपयोग किये बिना कुछ उपलब्धि नहीं कर सकता। अधिकांश अति-क्रियाशील लोग सन्तुलित नहीं होते तथा उनकी मनःस्थिति अस्वाभाविक होती है। मदोन्मत्त तथा विच्छू के द्वारा दंशित बन्दर की क्रिया में कोई विशेषता नहीं है और इन लोगों की क्रियाएँ भी इसी तरह की अर्ध-विक्षिप्त, असंबद्ध, कर्म के लिए कर्म, होती हैं। उसके बाद वे आकर शिकायत करते हैं: 'साधना के लिए मेरे पास समय कहाँ है? काश, मेरे पास समय होता!" इत्यादि-इत्यादि। चंचलता उतनी ही बुरी है, जितना आलस्य। आवेग उतना ही बुरा है, जितनी जड़ता। अतः इस प्रकार की क्रियाशीलता स्तुत्य नहीं है। और इन मामलों में, कर्त्तव्य केवल एक बहाना मात्र होता है। अधिकांशतः अपनी चंचलता और असन्तुलन को छुपाने के लिए कर्त्तव्य का स्वयं निर्माण किया जाता है। हम अपने आप से भागना चाहते हैं और अपने कर्त्तव्यों को बढ़ाते जाते हैं,

जिससे अपने और दूसरों के लिए एक आसान बहाना मिल जाये। वास्तविक कर्त्तव्य बिल्कुल भिन्न वस्तु है। अनावश्यक सामाजिक उत्सव सर्वत्र सांसारिक लोगों के लिए होते हैं। उनमें बहुत सी बुराइयाँ होती हैं। ऐसे अनावश्यक कर्म न प्रारम्भ करो, जो तुम्हारा अथवा दूसरों का कोई भला न करें।

जिन्हें अपने दैहिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ता है, उनके लिए परमात्मा की ओर जाना कठिन है। इस संघर्ष के बावजूद ऐसा करने में समर्थ लोग बहुत कम हैं। सभी को खाली समय चाहिए जिसका सदुपयोग किया जा सके। प्रार्थना, जप, ध्यान, गहन अध्ययन तथा अन्य प्रकार की साधनाओं के द्वारा सदा परमात्मा का कार्य करने का प्रयत्न करो। जितना अधिक सम्भव हो, इनके लिए समय निकालने का प्रयत्न करो। कर्म को पूर्ण अनासक्ति के साथ करना चाहिए और उसे साध्य नहीं बल्कि साधन समझना चाहिए।

यंत्र भी कर्म करते हैं, और हमें कर्म करते समय यह सोचना चाहिए कि हम परमात्मा के हाथों में यन्त्र हैं। तब हमारा समग्र दृष्टिकोण परिवर्तित हो जायेगा और हमारा कर्म भी साधना का, प्रभु की सेवा का अंग बन जायेगा। कर्म का लक्ष्य सदा परमात्मा की ओर होना चाहिए। हम चाहे कोई भी कर्म कर रहे हों, हमारा यही सजग दृष्टिकोण होना चाहिए। ऐसा करने में, कुछ तरह के कर्मों को त्यागना होगा। श्रीमद् भागवत् में कहा गया है :

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थ पद सेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥
श्रीमद् भागवतः ::२३, ५६

अर्थात् वह व्यक्ति जीवित होते हुए भी मृत हैं, इस संसार में जिसके कर्म न धर्म के लिए, न वैराग्य के लिए, और न भगवान् की पादसेवा के लिए होते हैं।

(क्रमशः)

मनुष्य ही तो रुपया पैदा करता है। रुपये से मनुष्य पैदा होता है यह कभी सुना है? यदि तुम अपने मन और वचन को एक कर सके तथा वचन और क्रिया को एक कर सके तो धन आप ही तेरे पास जलवत् बह आयगा।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द महा निर्वाण दिवस : ४, जुलाई

महाउदय

—मोहन सिंह मनराल
—सुरईखेत, अल्मोड़ा (उ० प्र०)

"देव, चलते ही चलो बेरोकटोक
विश्व को दुपहर न जबतक घेर ले,
कर तुम्हारा हर जमी जबतक न दे
स्त्री-पुरुष जब तक न देखें चाव से—
बेड़ियाँ उनकी कटी उल्लास की,
जाँ नई जब तक न समझें आ गयी।"

कविता की ये पंक्तियाँ अपने महानिर्वाण ४ जुलाई १९०२ ई० से ठीक चार वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने "चौथी जुलाई के प्रति' शीर्षक से काश्मीर भ्रमण के दौरान अपनी अमरीकन शिष्याओं के लिए रची थीं। चौथी जुलाई संयुक्त राज्य अमेरिका का स्वाधीनता दिवस था और यही चौथी जुलाई स्वामीजी का निर्वाण दिवस भी बन गया। क्या यह एक संयोग था या भविष्यवाणी ? लम्बी कविता के इन अन्तिम शब्दों से तो यही लगता है, यह अपने आप में ही एक भावी संदेश का प्रसारण था। ठीक वैसा ही संदेश जो उन्होंने कुछ वर्ष पूर्व अपने एक पत्र में इन शब्दों दिया था "हो सकता है कि अपने शरीर से बाहर आ जाना और उसे फटे कपड़े की तरह त्याग देना मेरे लिए श्रेयस्कर हो। पर मैं कार्य करना बन्द न करूँगा। मैं सर्वत्र लोगों को प्रेरणा देता रहूँगा। जबतक कि संसार यह जान न ले कि वह ईश्वर से अभिन्न है।"

अपनी बेड़ियों को स्वयं काटने व जगत के लिए ऐसा करने में समर्थ होना तथा स्वयं नित्य-मुक्त आत्मरूप हो जाने का वह कार्य जिसकी उद्घोषणा के लिए इस देश को एक मंच के रूप में उन्होंने अपनाया था यह उसी का स्वाधीनता दिवस था। इसी चौथी जुलाई को सर्वजनों की मुक्ति का पथ प्रशस्त करने वाले पूर्ण मानव स्वयं पंचभौतिक शरीर से मुक्त हो गये। मगर उनकी विदाई के साथ सब कुछ समाप्त नहीं हो गया वरन् यहीं से एक नये युग व नये अध्याय का आरम्भ हो गया। अपने महाप्रयाण के इस अन्तिम अध्याय पर वे मानवता के महाउदय का हस्ताक्षर अंकित कर गये। उस महाउदय में अंकित था—मानव के भीतर निहित दिव्यता का उदय, दया, करुणा, प्रेम व सहानुभूति का उदय, प्रखर बौद्धिक, मानसिक व शारीरिक क्षमता के साथ हृदय की तीव्र अनुभूति का उदय। वेदान्त के सत्यों का जन-जन के जीवन संग्राम में उदय।

मेरे उपास्य देव :—

जो देह नहीं, मन नहीं, बुद्धि नहीं वे भला इनके चले जाने पर भी स्वयं कैसे जा सकते हैं ? जो कालातीत हैं वे काल की सीमाओं में कहां ठहर सकते हैं ? उनमें जगत ने प्रखर मेधा, तीक्ष्ण, अन्तर्दृष्टि, असीम करुणा, तीव्र सहानुभूमि, प्रचंड कर्मशीलता, अगाध मातृभूमि प्रेम, त्याग-वैराग्य व ब्रह्मचर्य की त्रिवेणी व शून्य अहंबुद्धि के एक साथ दर्शन किये और उसका लोहा माना। उन्हें एक अतिमानव के रूप में कर्मरत होते देख जगत ठगा सा रह गया। समय की धारा ठहर गई और फिर नई दिशा को बढ़ चली। भाग्यवान लोगों ने अपनी आंखों के आगे युग को करवट लेते व इतिहास को बनते देखा। मगर इस सब का मल

कहाँ था ? यदि खोजने चलें तो हम पायेंगे यह उनके भीतर निहित उस करुणार्द्र हृदय में समाहित था जो जन-जन के लिए प्रेम में रूपान्तरित हो गया था। इसी हृदय से निकली अजस्र सहानुभति शत-शत करुणधाराओं में प्रवाहित हुई थी जिसका सत्र उन्हें अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण देव के प्रेम में प्राप्त हुआ था।

इस प्रेम से प्रेरित हो वे कह उठे थे—'मुझे लोगों के बीच जाना होगा। मेरी आत्मा मुझे पुकार-पुकार कर कह रही है मुझे लोगों के दुःख-दर्द बाँटने होंगे।" वे एक पल खोये बिना लोगों के बीच कूद पड़े। अपने गुरुदेव के प्यार का मूल्य चुकाने जिसने उन्हें पूरी तरह बदलकर रख दिया था। पग-पग पर वह प्रेम दुःखी मानवता के कल्याण की चिन्ता व प्रयास के रूप में उनके सम्पर्क में आता रहा। वे उसमें गोता लगाते, तैरते और बहते रहे। सबसे निचले स्तर पर जीने को बाध्य मानव रूपी ईश्वर के लिए हज़ारों बार जन्म लेने और दुःख भोगने को तैयार हो उठे। पापी-तापी, दुःखी-दरिद्रों, अज्ञानी-मूर्खों में ईश्वर के महाउदय की घोषणा करते हुए उन्होंने कहा—"मैं सूर्य के प्रकाश की तरह यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि जो ब्रह्म, जो शक्ति मुझमें है, वही इनमें भी बस अभिव्यक्ति की मात्रा भरमें थोड़ा अन्तर है, इतना ही है।" अतः उन्होंने इच्छा व्यक्त की—"मेरी अभिलाषा है कि मैं बारम्बार जन्म लूँ और हजारों दुःख भोगता रहूँ ताकि मैं उस एकमात्र ईश्वर की पूजा कर सकूँ जिसकी सचमुच सत्ता है। सबसे बढ़कर सभी जातियों और वर्णों के पापी-तापी और दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य है।

सेवा बनाम ईश्वर उपासना :—

इसके साथ ही वह महायज्ञ प्रारम्भ हुआ जिसने इस सत्य को आज विविध रूपों में कार्य में परिणित किया है। कौन-सा सत्य ? वह सत्य जिसकी घोषणा करते हुए स्वामीजी कहते हैं—"इतनी तपस्या के बाद मैंने सर्वोच्च सत्य को जाना है और वह यह है कि वह परमेश्वर प्रत्येक जीव में विद्यमान है। ये सब उसी के नानाविध रूप हैं। इनको छोड़ और कोई दूसरा ईश्वर नहीं, जिसकी हम खोज करें। वास्तव में वही परमेश्वर की उपासना करता है जो सब जीवों की सेवा करता है।" इस सेवा बनाम ईश्वर उपासना रूपी महायज्ञ में महान आत्माओं के आत्मबलिदान को एक समाधान बनाकर महान स्वामीजी आह्वान करते हैं "ऐ नवयुवकों मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीडितों के लिए इस सहानुभूति और अथक प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें सौंपता हूँ। जाओ उनके सम्मुख एक महाबलिदो। अपने जीवन की बलि दो।"

इस महाबलिदान से ही वह महाउदय सम्भव है जो मुक्ति को अपना एकमात्र धर्म अंगीकार करता है। जो जीवन को धर्म से और धर्म को जीवन से जोड़कर सरस और उपयोगी बना देता है। जो अरण्य के ज्ञान को भक्ति वारि से सींचकर मधुरता से भर देता है। जो मुक्ति को एकमात्र धर्म बनाकर धर्म को ही मुक्त कर देता है। संकीर्णता से, हठधार्मिता से, सम्प्रदायिकता से, रूढ़िवादिता से और भावुकता से सारी सीमाएं तोड़ कर जीवन में प्रवेश कर जाता है। आज हम जान ही नहीं पा रहे हैं कि आज वे किस-किस उपाय से किन-किन रूपों में काल के ऊपर सवार हो हमारे जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। हमारी धमनियों में प्रवाहित हो रहे हैं, हमारे उत्साह व कर्म में कूद रहे हैं और हमारे मस्तिष्क में रहस्योदघाटन कर रहे हैं। उन्हें ढूँढ निकालने की आवश्यकता और मुखरित हो रही है ताकि इस प्रक्रिया को द्रुत गति दी जा सके।

आग में कूद पड़ो :—

अपने बंधनों का ज्ञान और उनके निवारण का प्रयास ही वह प्रक्रिया है जो इस खोज में आलोक दे सकती है। क्योंकि मुक्त होकर ही मुक्ति को पाया जा सकता है न कि बन्द होकर। बंधनों मे मुक्ति ही प्रधान आवश्यकता है और यह मुक्ति बाहर व भीतर दोनों प्रकार से सम्भव है। मगर भीतर की मुक्ति ही यथार्थ है। जैसा वे कहते हैं बंधन तो बंधन ही है चाहे लोहे की जंजीरों के हो या सोने की। अज्ञान को ज्ञान रूपी कांटे से निकालकर दोनों को फेंकदेना होता है। पर इस प्रक्रिया से गुजरने के लिए आग में कूद पड़ना होगा यही उस महाउदय को जन्म दे सकेगा। जैसा स्वामीजी ने आदेश दिया है 'आग में कूद पड़ो और लोगों को परमात्मा की ओर ले जाओ" यही हमारा आदर्श वाक्य है। व्यक्तिगत स्तर पर और समाज के स्तर पर भी। हमारी तमाम हलचलों का केन्द्र ही यही है कि सर्वप्रथम हम स्वयं आग में कूद पड़ने को तैयार रहें और फिर लोगों को उस पथ पर ले जायें। 'बनो और बनाओ' के इस आदर्श के साथ ही श्रद्धान्वित हृदय से एक आवाज आती है जो शत-शत बार नमन करते हुए खामोशी के साथ वायुमण्डल में समा जाती है—

हे कर्मवीर। हे धर्मवीर !
हे मानवता के पोड़ाहारक
हे जग-जन के उद्धारक !
तुम्हें शत-शत बार नमन
किया तुमने अविरल संग्राम।
चलता रहेगा अब
यह युगचक्र अविराम !!
तुम्हें शत-शत बार प्रणाम !"

—जय स्वामीजी !

□

विशाल हृदय

संत अलवार अपनी आवश्यकताओं को न्यूनतम रखते थे। उनकी कुटिया भी इतनी ही बड़ी थी कि उसमें केवल एक आदमी सो सकता था।

एक दिन मूसलधार वर्षा हो रही थी। जाड़े का मौसम था। रात का समय था। चारो ओर अंधकार था। संत आलवार अपनी कुटिया में आराम कर रहे थे। अचानक दरवाजे पर दस्तक हुई। आलवार ने दरवाजा खोलकर देखा—एक आदमी पानी से तर बतर खड़ा है और जाड़े से थर-थर कांप रहा है। आगंतुक ने बताया कि वह रास्ता भटक गया है और रात बिताने को जगह चाहता है, सुबह चला जाएगा। आलवार बोले, "भीतर आ जाओ। इस कुटिया में एक आदमी सो सकता है, परंतु दो बैठ सकते हैं। हम दोनों बैठकर रात काट लेंगे।"

वह आदमी भीतर आ गया और आलवार ने दरवाजा बंद कर दिया। कुछ देर बाद दरवाजे पर फिर दस्तक हुई।

आलवार ने दरवाजा खोला—एक आदमी गीले कपड़ों में लिपटा खड़ा जाड़े से कांप रहा था। उस आदमी ने भी कहा कि वह रात भर के लिए आश्रय चाहता है।

आलवार ने कहा, "कुटिया तुम्हारी ही है, मजे में रात बिताओ। इस कुटिया में एक आदमी सो सकता है या दो बैठ सकते हैं, या तीन खड़े रह सकते हैं। भीतर आ जाओ, आज की रात हम तीनो खड़े-खड़े बिताएंगे।"

वह आदमी भी अंदर आ गया। उन तीनों ने रात खड़े रहकर बिताई। —गोपी रमण कंठ

साधकों के प्रश्न : स्वामी ब्रह्मेशानन्द के उत्तर

[रामकृष्ण आश्रम, राजकोट में वार्षिकोत्सव के अवसर पर आयोजित भक्त सम्मेलन में दिनांक ७-५-६५ को भक्तों के प्रश्नों के उत्तर का सारांश—सं०]

प्रश्न : आपने कहा कि आपकी असफलता स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक पढ़ने से सफलता में परिणत हो गयी। वह कौन-सी पुस्तक थी ?

उत्तर : अंग्रेजी विवेकानन्द साहित्य के प्रथम खण्ड में प्रकाशित "कर्मयोग, तथा राजयोग" लेकिन सम्भवत: आपको स्वामी विवेकानन्द की और कोई पुस्तक प्रेरणा प्रदान कर सकती है।

प्रश्न : एक विद्यार्थी तथा एक डाक्टर अपने कार्य के समय किस तरह भगवान का अनुभव करे ?

उत्तर : विद्यार्थी यह समझे कि जो अध्ययन तथा शिक्षा अर्जन वह कर रहा है, वह ईश्वर की आराधना के लिए कर रहा है। अत: इसे पूरे मनो योग से करे। अपने अध्यापक को नारायण समझे। विद्यार्थी-जीवन चरित्र-निर्माण का काल है। चरित्र-निर्माण ही सर्वश्रेष्ठ उपासना समझ कर करें।

डाक्टर रोगी को नारायण समझे। जिस प्रकार मूर्ति की धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदि से आराधना होती है इसी तरह रोगी की टेबलेट, मिक्चर, इन्जेक्शन, पथ्य, घाव का ड्रेसिंग, ऑपरेशन आदि के द्वारा आराधना होती है। "इहागच्छ", इहतिष्ठ" आदि मन्त्रों के स्थान पर, "भाई घबराओ नहीं, तुम ठीक हो जाओगे, इत्यादि इस रोगी नारायण की पूजा के मन्त्र हैं। इस तरह डाक्टर अपने कार्य को आराधना में परिणत कर सकता है।

प्रश्न : आपके प्रवचन में सुना कि सब में ईश्वर दर्शन करना चाहिए। लेकिन जब किसी के साथ शत्रुता हो तो उसमें दुष्टता ही नजर आती है। ऐसे में क्या करना चाहिए।

उत्तर : दुष्टता के स्थान पर उसके अन्दर विद्यमान ईश्वर को देखने का बार-बार प्रयत्न करना चाहिए। पहले एकान्त में बैठकर गहराई से यह विचार करना चाहिए कि उसमें भगवान हैं — और उसके बाद व्यवहार में भी उसे इसी तरह परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिये। सम्भवत: आप उसे दुष्ट समझ रहे हों लेकिन वह मूलत: दुष्ट न हो। यदि आप उसमें भगवान को देखेंगे, तो उसका प्रभाव उसपर भी पड़ेगा और आपके सम्बन्धों में सुधार होने की संभावना रहेगी।

गाजीपुर के सन्त पवहारी बाबा के घर में एक रात को चोर घुसा। पवहारी बाबा की नींद खुल गयी तो वह भागा। पवहारी बाबा चोरी का सामान लेकर उसके पीछे भागे और अन्त में उसे पकड़ लिया। चोर तो डर के मारे काँप रहा था। लेकिन पवहारी बाबा ने उसके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहा "प्रभु, आप मेरे घर आये थे, मेरी नींद खुल जाने से आपके कार्य में व्यवधान हुआ, कृपया क्षमा कीजिए, ये लीजिए आपका सामान।" पवहारी बाबा के ऐसे व्यवहार से वह चोर उनका शिष्य बन गया और आगे चल कर एक अच्छा सन्त बना।

प्रश्न : यदि कोई व्यापार में हमें धोखा दे तो हमें क्या कदम उठाने चाहिए ?

उत्तर : उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही कर के उसे दण्ड दिलाना चाहिए। हमें सज्जन होना चाहिए, लेकिन हमें अपनी रक्षा भी करना आना चाहिए, और इतने चतुर भी होना चाहिए कि लोग हमें धोखा न दे सकें। दूसरों को कष्ट न दो, हानि मत पहुँचाओ, लेकिन अपनी रक्षा के लिए दूसरों को थोड़ा डर दिखाना पड़ता है। यही शठ नारायण को उपासना का तरीका है।

प्रश्न : कार चलाते समय हम किस प्रकार ध्यान कर सकते हैं ?

उत्तर : कृपया कार चलाते समय ध्यान मत कीजिए, अन्यथा आप दुर्घटना कर बैठेंगे। मैंने अपने प्रवचन में भगवत सान्निध्य की बात कही थी। यह कार्य कार में अपने स्टीयरिंग के चक्के के पास भगवान् के चित्र को रख कर, तथा बीच-बीच में उसे क्षण भर के लिए देखते रहने से हो सकती है। कार चलाते समय पूरी एकाग्रता से कार चलाइये तथा अन्त में उस भगवान् को समर्पित कर दीजिए।

प्रश्न : ईश्वर में अटूट विश्वास होने पर भी मन सांसारिक चिन्तन अधिक करता है। परिणाम स्वरूप स्कूटर चलता रहता है और मन कुछ और चिन्तन करता रहता है, और दुर्घटना होने की सम्भावना बनी रहती है। कृपया सुझाव देवें।

उत्तर : प्रतिदिन प्रातःकाल नियमित रूप से एक आसन पर बैठकर ध्यान-जप करने का अभ्यास बना लेवें। धीरे-धीरे आपका मन पहले से अधिक शान्त और सजग हो पायेगा। चंचलता मन का स्वभाव है। और उसे नियंत्रित करना समय सापेक्ष है। स्कूटर चलाना या जो कोई भी कार्य करना हो वह पूरे मनोयोग से करना भी एक प्रकार की साधना है।

प्रश्न : मैं भगवान् रामकृष्ण तथा सबको अद्वैत भाव से देखना चाहता हूँ। कृपया सुझाव देवें।

उत्तर : सब में अद्वैत का साक्षात्कार करना सभी में एक परमात्मा का दर्शन करना, साधना की चरम अवस्था है। पहले अपने भीतर परमात्मा को देखने का प्रयत्न करें। यदि आप स्वयं को देह-मन का संघात समझते रहेंगे, तो कभी दूसरे को आत्मा के रूप में नहीं देख सकेंगे। अतः सर्वप्रथम स्वयं को देह-मन से भिन्न आत्मा के रूप में अनुभव करने का प्रयत्न कीजिए। तथा दूसरों को देखने पर यह सोचिए कि उनके रूप के भीतर परमात्मा विद्यमान है।

प्रश्न : शिवजी देवाधिदेव हैं, तो वे किसका ध्यान करते हैं ?

उत्तर : एक बार अर्जुन रात को श्रीकृष्ण के पास गये, तो देखा वे ध्यान कर रहे थे। ध्यान से उठने पर अर्जुन ने पूछा कि प्रभु आप तो स्वयं ईश्वर हैं। आपका ध्यान सब करते हैं, तो आप किसका ध्यान कर रहे थे ? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया : मैं अपने स्वरूप का ध्यान कर रहा था। इसी प्रकार भगवान् शंकर भी अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करते हैं। हम सभी को अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

एक दूसरे मत के अनुसार भगवान् शंकर भगवान् राम का ध्यान करते हैं, जो उनके इष्ट हैं।

प्रश्न : हमारे शरीर में विद्यमान सात चक्रों को कैसे खोल सकते हैं।

उत्तर : एकाग्र मन से भगवान् के नाम का जप करना इसका सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

प्रश्न : ध्यान का प्रारम्भ कैसे किया जाय ? क्या ध्यान में प्राणायाम आवश्यक है ?

उत्तर : किसी अवतारी महापुरुष, अथवा देवी या देवता के रूप के ध्यान से प्रारम्भ कीजिए, जिसमें आपकी श्रद्धा हो। एक आसन पर सुखासन में, पालथी मार कर स्थिर बैठ जाइए और सामने उस देवी-देवता का चित्र रख लीजिए। पहले ५ मिनिट तक आँखें खोलकर चित्र को एकटक देखते रहिए, उसके बाद आँख बन्द करके उसी का ध्यान बनाए रखिए। यदि मन इधर-उधर भागे, तो उसे बार-बार उस रूप पर लाने का प्रयत्न कीजिए।

प्राणायाम सहायक हो सकता है, लेकिन बिना किसी के निर्देश के करने से उसमें खतरे भी हैं। इसके बदले नाड़ी शुद्धि कीजिए। अर्थात् एक नाक से धीरे-धीरे श्वास खींचिए और दूसरे नाक से धीरे-धीरे- उतने ही समय में श्वास निकाल दीजिए। ऐसा आठ या दस बार कीजिए, लेकिन श्वास कभी मत रोकिये।

प्रश्न : जप करते समय ईश्वर दर्शन के लिए यदि व्याकुलता न हो तो क्या करें ?

उत्तर : भगवान् से ही प्रार्थना करें कि वे आपको व्याकुलता प्रदान करें। संसार के तथा सांसारिक जीवन के दोष दर्शन से भी वैराग्य होता है, और व्याकुलता में वृद्धि होती है।

प्रश्न : ईश्वर साकार और निराकार भी है, तो क्या इष्ट के साथ संदेह साक्षात्कार सम्भव है ? वह Hallucination या दृष्टिभ्रम तो नहीं कहलायेगा ?

उत्तर : हाँ, ईश्वर साकार रूप में दर्शन दे सकता है। लेकिन ईश्वर का साकार रूप सामान्य मानवों जैसा नहीं होता और न ही वह सामान्य चक्षुओं से देखा जा सकता है। वह दिव्य चक्षुओं द्वारा ही देखा जा सकता है। ये दिव्यचक्षु दीर्घ-कालीन कठोर साधना द्वारा अथवा भगवत् कृपा द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। द्वितीयतः वास्तविक भगवद् दर्शन चाहे वह निराकार का हो या साकार का, उसमें इष्ट के चैतन्य, जीवन्त आनन्दमय तथा ज्योतिर्मय रूप के दर्शन होते हैं। रूप के अतिरिक्त आनन्द और चैतन्य की अनुभूति अधिक प्रगाढ़ होती है। श्रीरामकृष्ण ने जब सर्वप्रथम माँ जगदम्बा का दर्शन किया था, तब वे एक आनन्द सागर में निमग्न हो गये थे। तीसरी बात यह है, कि वास्तविक दर्शन से साधक के जीवन में समूल परिवर्तन हो जाता है, वह एक सन्त, ऋषि बन जाता है। ये सारी बातें दृष्टिभ्रम या हेल्युशिनेशन में कदापि सम्भव नहीं हैं।

प्रश्न : यदि कोई मूर्ति हमारे साथ बात करती है तो उस मूर्ति के बारे में आपका क्या ख्याल है ? कुछ लोग मूर्ति को पत्थर मानते हैं।

उत्तर : मूर्ति परमात्मा का प्रतीक होती है, जो परमात्मा का साधक या पूजक को स्मरण दिलाती है। धीरे-धीरे साधना में प्रगति करने पर साधक उसमें अपने इष्ट का अधिकाधिक प्रकाश अनुभव करने लगता है। वस्तुतः साधक अपनी चैतन्य आत्मा का ही प्रकाश मूर्ति में देखता है, तथा बात भी करता है। लेकिन वास्तविक दर्शन तथा बातचीत इतनी उच्च आध्यात्मिक कोटि की होती है कि उन्हें "बातचीत" नहीं कहा जा सकता। अगर कोई सामान्य व्यक्ति जिसका चरित्र उन्नत न हो, और वह मूर्ति से बात करता हो तो बहुत सम्भव यह मतिभ्रम या हेल्युसिनेशन ही है।

प्रश्न : जब मैं सुन्दर भजन सुनता हूँ अथवा भगवान् की मूर्ति को देखता हूँ तो आँखों से आँसू आने लगते हैं। इस अनुभूति के बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर : आप बहुत भावुक प्रकृति के हैं। इस प्रकार की बातों को अधिक महत्व नहीं देना

चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में भाव और दर्शन आदि की अपेक्षा त्याग वैराग्य और संयम का बहुत अधिक महत्व है। आँखों के आँसुओं को प्रकट न करें, बाहर न बहने दें, बल्कि भीतर जाने दें, जिससे हृदय धुल कर साफ हो जावे।

प्रश्न : जिस माँ काली की पूजा श्रीरामकृष्ण ने की थी उनकी मूर्ति रामकृष्ण मिशन के मन्दिरों में क्यों नहीं होती ?

उत्तर : श्रीरामकृष्ण के उपासक उन्हें सर्वदेव-देवी स्वरूप मानते हैं। अतः श्रीरामकृष्ण और काली में कोई भेद नहीं है। श्रीरामकृष्ण को महासमाधि के समय माँ शारदा ने रोते हुए कहा था कि माँ काली तू मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी ! यह बात भी इसी का प्रमाण है कि श्रीरामकृष्ण और माँ काली में कोई अन्तर नहीं है।

प्रश्न : कुछ लोगों के मन संकीर्ण क्यों होते हैं ?

उत्तर : भगवान ने सभी प्रकार के लोगों की रचना की है। जानवरों में सांप, बिच्छू, शेर, जैसे हिंसक प्राणी भी हैं और गाय, बकरी, कबूतर आदि निरीह प्राणी भी। उसी तरह मानव में भी अनेक प्रकार के लोग हैं। पर आप दूसरों के गुण दोषों का अंकन क्यों करते हैं ? आप स्वयं देखने का प्रयत्न कीजिए कि आप कैसे हैं ? यदि आप स्वयं को संकीर्ण और स्वार्थी पायें तो स्वयं निःस्वार्थ व उदार बनने का प्रयत्न करें। दूसरा कैसा है, इसकी चिन्ता में व्यर्थ समय न गँवायें।

प्रश्न : ध्यान के समय मन में आने वाले बुरे विचारों को कैसे दूर करें ?

उत्तर : ध्यान की प्रारंभिक अवस्था में ध्यान के फलस्वरूप हमारे अचेतन मन का सृजन होता है, जिसके कारण उसमें संचित बहुत से बुरे विचार चेतन मन पर उठने लगते हैं और ध्यान के समय प्रकट होते हैं। ऐसी स्थिति में ध्यान करने के पूर्व कुछ समय तक अपने मन को निष्पक्ष साक्षी के रूप में अवलोकन करते रहिए, जो भी विचार मन में उठें, उन्हें देखते रहिए, उन्हें दूर करने या निरुद्ध करने का प्रयत्न न करें। धीरे-धीरे मन अपने आप शान्त हो जायेगा।

प्रश्न : आजकल जो झूठ का सहारा लेता है, वही समाज में टिका रह सकता है। अपना अस्तित्व बनाये रख सकता है। ऐसे में क्या उपाय है ?

उत्तर : केवल आज ही नहीं बल्कि यह परिस्थिति सर्वदा विद्यमान थी। महाभारत काल में भी सत्य-मार्ग, धर्म-मार्ग का अवलंबन करने वाले पाण्डवों को कितने कष्ट सहन करने पड़े ! तात्पर्य यह कि सत्य का पथ सदा ही कठिन रहा है। महात्मा गांधी ने कहा है कि यदि सत्य का पालन करना फूलों की सेज होता तो सभी उसका पालन कर पाते। हमें सर्वदा सत्य को पकड़े रहना चाहिए, चाहे प्रलय ही क्यों न हो जाये। चाहे मृत्यु ही क्यों न आ जावे। हमें सर्वप्रथम हमारे जीवन का उद्देश्य एवं लक्ष्य, निर्धारित कर लेना चाहिए। और वह होना चाहिए धर्म, सत्य। और उसके लिए सर्वस्व का त्याग करने के लिए भी तत्पर होना चाहिए।

प्रश्न : सारदामठ में बहनों के सम्मिलित होने के लिए क्या योग्ताएँ आवश्यक हैं ?

उत्तर : सारदामठ महिला संन्यासिनियों की संस्था है, जो रामकृष्ण मिशन के आदर्शों के अनुरूप ही कार्य करती है। इसमें सम्मिलित होने के लिये त्याग एवं सेवा को जीवन के आदर्श के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। यह संन्यास का जीवन है, जिसके लिए संसार के प्रति तीव्र

वैराग्य अत्यावश्यक है, क्योंकि उसके बिना इस कठिन मार्ग पर अधिक अग्रसर नहीं हुआ जा सकता।

प्रश्न : ईर्ष्या का त्याग आध्यात्मिक शिक्षा का अंग है, लेकिन यह ईर्ष्या भक्तों में भी पायी जाती है। ऐसा क्यों ? इस ईर्ष्या की भावना को दूर करने का उपाय बतायें।

उत्तर : आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभ में साधक कुछ मात्रा में अधिक स्वार्थी हो जाता है, क्योंकि वह स्वयं की आध्यात्मिक प्रगति का विचार करने लगता है। इस स्थिति में ईर्ष्या की वृद्धि हो जाती है। यही कारण है कि भक्तों में यह विशेष रूप से दिखाई देती है। लेकिन सभी भक्तों एवं साधकों को यह जानना चाहिए कि यह एक बड़ी बाधा है। ईर्ष्या से अहंकार पुष्ट होता है। अतः उसको दूर करने का सर्वप्रथम उपाय यह है कि उसको बुराई के रूप में स्वीकार करें। द्वितीयतः सुखी व्यक्ति के प्रति मैत्री, दुःखी के प्रति करुणा, पुण्यात्मा के प्रति मुदिता या प्रसन्नता और पापी के प्रति उपेक्षा इन चार भावनाओं का अपने जीवन में आचरण करने का प्रयत्न करें। यदि कोई जीवन में प्रगति करे या शुभ कार्य करे तो उससे मैत्री करने का प्रयत्न करें, प्रसन्न होवें।

प्रश्न : क्या आहार-शुद्धि आवश्यक है ?

उत्तर : आहार में जाति, निमित्त और आश्रय ये तीन प्रकार के दोष होते हैं। यथा संभव शुद्ध आहार ग्रहण करना श्रेयस्कर है, लेकिन उसके बारे में बहुत अधिक संवेदनशील बनना उचित नहीं। आहार का अर्थ समस्त इन्द्रियों के माध्यम से आहरित ज्ञान भी है। अतः केवल अन्न ही नहीं बल्कि नेत्रों, कानों आदि से शुभ संवेदन ग्रहण करना भी आहार शुद्धि के अन्तर्गत आता है।

जहाँ तक मांसाहार का प्रश्न है, यह व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर करता है। जो बाल्यकाल से ही मछली-माँसादि खाते हैं, उनके लिए वही स्वाभाविक है - शारीरिक और मानसिक दृष्टि से। लेकिन यह भी सत्य है कि उच्चत्तर आध्यात्मिक जीवन के लिए सात्त्विक आहार ही श्रेयस्कर है।

प्रश्न : क्या आप यह सोचते हैं कि नौकरी अथवा कोई धन्धा करने पर ही स्त्री पुरुष की बराबरी कर सकती है ? क्या ऐसी बराबरी आवश्यक है ?

उत्तर :—इस तरह की बराबरी कतई आवश्यक नहीं है। नारी की मानव जीवन को सुखमय और सन्तुलित बनाने में अपनी भूमिका है, उसी प्रकार पुरुष की भी। नारी कोमलता, स्नेह, सहिष्णुता, मातृत्व आदि अपने गुणों के माध्यम से पुरुष की सहभागिनी, सहधर्मिणी बन कर परिवार और समाज को सुखमय बना सकती है।

प्रश्न : काम की युवक अथवा युवती के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन आपने अपने भाषण में उसका उल्लेख क्यों नहीं किया ?

उत्तर : हाँ, काम का यौवन में प्राधान्य रहता है, वह यौवन में व्यक्ति को अत्यधिक प्रभावित करता है यह बात प्राच्य या पाश्चात्य सभी मनीषी स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य मनोविज्ञ फ्रायड ने तो उसको मानव जीवन को परिचालित करने वाले घटकों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया किया है। उसके मत को अस्वीकार करने पर भी काम के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। भारत में तो काम की पूर्ति को चतुर्पुरुषार्थों में से एक माना गया है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश के साथ काम की समस्या का समाधान भी अधिकांश लोगों के जीवन में हो जाता है। सामाजिक

व्यवस्था, सुरक्षा और गृहस्थ जीवन के सुख, शान्ति और गौरव को बनाये रखने के लिए भारतीय समाज में विवाहेतर काम को स्वीकृति नहीं दी जाती है।

अतः काम समस्या तभी बनता है जब व्यक्ति पति-पत्नी के सम्बन्धों के अतिरिक्त काम सम्बन्ध रखना चाहता है, या चाहती है, अथवा काम पर विजय पाने के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन-यापन करना चाहता है। इन दोनों ही श्रेणी के लोग बहुत कम होते हैं। अतः सामान्यतः जनसाधारण के बीच काम के विषय में चर्चा करना आवश्यक नहीं रहता। व्यक्ति विशेष की समस्या पर पृथक चर्चा की जा सकती है।

प्रश्न : ब्रह्मचर्य पालन के लिए कोई आसन, प्राणायाम, आहार सम्बन्धी नियम औषधि आदि सुझावें।

उत्तर : ब्रह्मचर्य के तीन स्तर है: (१) आध्यात्मिक अर्थात् ब्रह्म में चरण यानि ब्रह्म का निरंतर चिन्तन करना, (२) मानसिक अर्थात् मन में काम सम्बन्धी विचार न आने देना तथा उसे सच्चिन्तन एवं सत्कार्य में लगाये रहना, (३) भौतिक अर्थात् मैथुन का त्याग तथा वीर्य नाश को रोकना। इनमें प्रथम लक्ष्य है—आदर्श है। दूसरे व तीसरे उपाय हैं। इनमें भी मानसिक ब्रह्मचर्य भौतिक से अधिक महत्वपूर्ण है।

श्रीरामकृष्ण के एक शिष्य स्वामी योगानन्द ब्रह्मचर्य के लिए एक योगी से कुछ आसनादि सीखना चाहते थे। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने उनको ऐसा करने से मना किया और एकाग्र मन से भगवन्नाम का जप करने को कहा। यही ब्रह्मचर्य का श्रेष्ठ उपाय है।

प्रश्न : यदि पति-पत्नी में से एक ब्रह्मचर्य का जीवन यापन करना चाहे और दूसरा कामोपभोग को अधिक महत्व दे तो ऐसे में पहले व्यक्ति को क्या करना चाहिए ?

उत्तर : यह एक जटिल समस्या है। ब्रह्मचर्य पालन करने के इच्छुक साधक को अपनी तीव्रता, लक्ष्य प्राप्ति के लिए व्याकुलता को, अपनी आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाना चाहिए। प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे उसके जीवन साथी की मति-गति भोग से योग की दिशा में परिवर्तित कर दें। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं, जहाँ एक अति-पवित्र नारी के चरित्र के कारण पुरुष के जीवन में परिवर्तन हो गया। मनी मोरेल के प्रभाव से काणी और क्रूर डाकू जैमल भी पीर सन्त बन गया। श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में एक दाना-काली नामक व्यक्ति थे जो शराबी एवं व्यभिचारी थे। उनकी पत्नी को माँ सारदा ने मंत्र प्रदान किया जिसका उसने, अपने पति के कल्याण के लिए बारह वर्ष तक निष्ठापूर्वक जप किया। परिणाम स्वरूप दाना काली के जीवन में परिवर्तन हुआ और वे श्रीरामकृष्ण के कृपापात्र शिष्य बनकर धन्य हुए।

प्रश्न : हमें स्कूल में सिखाया जाता है कि अच्छे भले, दयालु बनो। कॉलेज के वातावरण ने सिखाया है कि Practical (व्यावहारिक) बनो। यह बदलाव कैसे लायें। व्यवहार पटु कैसे बनें ? व्यवहार पटु होने का अर्थ क्या है ?

उत्तर : एक दिन श्रीरामकृष्ण ने अपने एक शिष्य को उनके लिए एक बर्तन खरीद कर लाने को कहा। शिष्य ने दुकानदार से कहा कि परम-हंसजी के लिए एक अच्छा बर्तन दो। लेकिन जब लाया गया तो वह फूटा निकला। तब श्रीरामकृष्ण ने शिष्य को डांटते हुए कहा कि साधु होने का अर्थ यह नहीं है कि तुम मूर्ख होओ। एक दिन श्रीरामकृष्ण को एक स्थान पर खाने का

निमंत्रण मिला। वहाँ पहुँचने पर देखा गया कि वहाँ बड़ी दुरवस्था है और श्रीरामकृष्ण को किसी ने अभ्यर्थना भी नहीं की। इससे क्रुद्ध होकर श्रीरामकृष्ण के सेवक राखाल ने कहा कि चलिए वापस चलें। इस पर श्रीरामकृष्ण ने उन्हें ठंडा करते हुए कहा कि गरम होने से काम नहीं चलेगा। लौटने पर दक्षिणेश्वर में इतनी रात को खाना नहीं मिलेगा और लौटने का गाड़ी भाड़ा भी कहाँ से लायेंगे ? श्रीरामकृष्ण वहीं रुके, भोजन किया और किसी तरह गाड़ी-भाड़ा लेकर वापस आये। ये दो दृष्टांत श्रीरामकृष्ण जैसे महान सन्त की व्यावहारिकता के हैं। दूसरों का यथा संभव भला करो, किसी को कष्ट न पहुँचाओ, लेकिन स्वयं की रक्षा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—सभी प्रकार की, करना भी हमें जानना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण-भावान्दोलन की विशेषताएँ

—स्वामी सोमेश्वरानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, खेतड़ी

[स्वामी सोमेश्वरानन्द धर्म, अध्यात्म, दर्शन और संस्कृति को सामाजिक परिवेश एवम् लोक-जीवन के सन्दर्भ में परखकर उन्हें नयी चेतना की दृष्टि से पारिभाषित करते रहे हैं। अबतक उनके आधे दर्जन से अधिक ग्रन्थ एवम् शताधिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। इतिहास चिंताय विवेकानन्द, लोक जीवने श्रीरामकृष्ण, धर्म, कुसंस्कार ओ लोकाचार, मार्क्स ओ विवेकानन्द आदि उनके प्रमुख ग्रंथ हैं। 'लोक जीवने श्रीरामकृष्ण' में सोमेश्वरानन्द जी ने सर्वप्रथम विस्तार पूर्वक श्रीरामकृष्ण की साधना, उपदेश और आचार को लोकजीवन के परिप्रेक्ष्य में आँकने का संस्तुत्य प्रयास किया है। यह लेख उसी ग्रंथ के आरम्भिक अंश का अनुवाद हैं। अनुवादक हैं —डॉ० केदारनाथ लाभ]

धर्म और सामाजिक प्रतिबद्धता

कुछ व्यक्तियों की धारणा है कि स्वामी विवेकानन्द ने अपने समाजसेवा के आदर्श में अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण का अनुसरण नहीं किया। श्रीरामकृष्ण ने साधन-भजन और व्यक्तिगत मुक्ति के ऊपर जोर दिया था। इसके विपरीत स्वामीजी ने पश्चिमी देशों की ईसाई मिशनरियों के अनुसरण में भारत में इस कर्मयज्ञ का प्रवर्त्तन किया था।

इस प्रकार की धारणा में कोई सार नहीं है। सबसे पहले तो संघबद्ध संन्यासियों का समाजसेवा का आदर्श ही पश्चिमी नहीं है। इतिहास में सर्वप्रथम भारतवर्ष ने ही यह दृष्टान्त अपनाया। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों ने जो विभिन्न शिक्षा संस्थानों और चिकित्सा केन्द्रों को स्थापनाकर समाजसेवा का कार्य आरम्भ किया था, उसका उदाहरण संसार के इतिहास में इसके पहले नहीं देखा जाता है। पश्चिमी देशों की ईसाई मिशनरियों ने इसीका अनुसरण किया था। स्वामीजी ने इसी प्राचीन भारतीय आदर्श को ही नवीन भाव से जीवनदान दिया था। दूसरी बात यह कि जो यह कहते हैं कि श्रीरामकृष्ण कामकाज या सेवा-कार्य के विरोधी थे, उन्होंने उनकी जीवनचर्या का गंभीर भाव से अध्ययन नहीं किया है। युवक

नरेन्द्रनाथ से जब उन्होंने प्रश्न किया था – "तुम क्या चाहते हो ?" और नरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया था – "शुकदेव की भाँति निर्विकल्प समाधि में डूबा रहना" तब श्रीरामकृष्ण ने उन्हें धिक्कारते हुए कहा था, "तुम इतने स्वार्थपरायण हो !" वस्तुत: उन्होंने बार बार नरेन्द्रनाथ को लोकशिक्षा देने की बात कही थी। नरेन्द्र इसके लिए राजी नहीं होते थे। उन्होंने कहा था, "(लोकशिक्षा का कार्य) कर नहीं पाऊँगा।" श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा था 'कर नहीं पाऊँगा क्या रे ! तुम्हें करना ही होगा।" नरेन्द्रनाथ ने कभी भी लोकशिक्षा या समाज-सेवा का व्रतधारी नहीं होना चाहा। किन्तु उनके गुरु ने उन्हें नहीं छोड़ा बार-बार इस कार्य के लिए उन्हें उत्प्रेरित किया। काशीपुर की मृत्यु-शय्या पर रहते हुए अपने हाथ से लिख दिया था, "नरेन शिक्षा देगा, जब घर और बाहर से पुकार होगी।" श्रीरामकृष्ण की संन्यासिनी शिष्या नारी गौरी माँ—१८ वर्ष की उम्र में संसार का त्याग कर अकेली हिमालय में कठोर तपस्या करती थीं। सारे भारत की पाँव-पैदल यात्रा की थी। वे जब दक्षिणेश्वर वापस आयीं, श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा था, "तुमने काफी तपस्या की है अब उस शक्ति को नारियों की सेवा में लगाओ। इस क्षेत्र में नारियों की बड़ी दुर्दशा है। तुम इन लोगों की शिक्षा की व्यवस्था करो।"

केवल नरेन्द्रनाथ और गौरी माँ को ही नहीं, अपनी लीला-सह धर्मिणी को भी श्रीरामकृष्ण कार्य में उतारना चाहते थे। काशीपुर उद्यान भवन में माँ सारदा को उन्होंने एकदिन अनुरोध करते हुए कहा था, "केवल मैं अकेला कार्य कर जाऊँगा, तुम कुछ नहीं करोगी ?" माँ सारदा संकुचित होती हुई बोली थीं, 'मैं औरत हूँ। मैं क्या कर पाऊँगी !" श्रीरामकृष्ण का उत्तर—"नहीं-नहीं, मैं क्या करता हूँ। तुम्हें इससे बहुत अधिक करना होगा। ·····लोग अन्धकार में कीड़ों की तरह किल्बिल् कर रहें हैं। तुम उनलोगों को थोड़ा देखो।" और जब गिरीश घोष ने प्रबल धर्म-भाव की अनुप्रेरणा से प्रेरित होकर अभिनय-जगत् से विदा लेना चाहा था, तब श्रीरामकृष्ण ने ही उनसे कहा था, "नाटक बन्द मत करो। उससे लोक शिक्षा होती है।" स्वामी विवेकानन्द जब भारतभ्रमण में रत थे तभी उनका साक्षात्कार हुआ उनके भावी संन्यासी शिष्य शरत्चन्द्र गुप्त (परवर्त्ती काल में स्वामी सदानन्द) से। उनसे स्वामीजी ने कहा, "देखो बच्चा, मेरे गुरु (श्रीराम-कृष्ण) मुझ पर एक कार्य का भार दे गये हैं। वे दो समस्याओं की बात कह गये हैं - एक आध्यात्मिक अवनति और दूसरी मनुष्य की दरिद्रता। इन दोनों समस्याओं के निराकरण का कार्य करने का दायित्व उन्होंने मुझे दिया है। इसके करने तक मुझे छुट्टी नहीं है।"

जीवन में दो बार उनके हृदय से गंभीर कन्द्रन फूट पड़ा था। प्रथम बार वे रोये थे ईश्वर के लिए "माँ, एक दिन और बीत गया, तुमने दर्शन नहीं दिये।" और दूसरी बार रोये थे मनुष्य के लिए; दक्षिणेश्वर में कोठे पर खड़ होकर ऊँचे स्वर से रो-रोकर वे कहते थे "अरे, तुम लोग कौन कहाँ हो, आओ।" उस पुकार का उत्तर मनुष्यों ने दिया था। उनके समीप जीवन-सत्य प्रकाशित हुआ था इस रूप में कि मनुष्य और ईश्वर पृथक् नहीं हैं, बल्कि एक ही सत्ता विभिन्न रूपों में प्रकाशित है। इसी से नरेन्द्रनाथ, राखाल और बाबूराम के भीतर उन्होंने जिस तरह 'नारायण' को देखा था उसी तरह 'माँ' को देखा था वेश्याओं के भीतर भी। इसीसे १९वीं शताब्दी के शिक्षित-संभ्रान्त बाबूलोगों द्वारा प्रचारित कठोर नीतिवाद का पालन नहीं कर उन्होंने आश्रय दिया था समाज के पतित नर-नारियों को। शराबी, पतिता, गुण्डा, पागल—कोई भी उनके स्नेह से वंचित नहीं हुआ। जीवन और जगत को श्रीराम-

कृष्ण ने पूर्णरूप से ग्रहण किया था। वे जानते थे कि संसार केवल नित्य सिद्ध और भले लोगों को लेकर ही नहीं सिरजा गया है। यहाँ हर प्रकार के मनुष्य हैं। संसार को समग्र रूप में ग्रहण करने से सबको ग्रहण करना होगा। फिर, जीवन तो केवल पुष्पाच्छादित पथ नहीं है! यहाँ सुख-दुःख, आनन्द-वेदना सभी हैं। इसीसे उन्होंने अपने भतीजे की मृत्यु हो जाने पर उसके निकट खड़े होकर मृत्यु को देखा, स्वयं कैन्सर से आक्रान्त होकर भी 'माँ' के समीप आरोग्य की कामना नहीं की। जीवन के सम्बन्ध में यही उनकी दृष्टिभंगी थी। सम्पूर्णजीवन के प्रवक्ता थे वे। प्रचण्ड पौरुष का स्वामी हुए बिना मनुष्य इस सम्पूर्ण जीवन को ग्रहण नहीं कर पाता। एक ओर पुरुषसिंह की भाँति वीर्यवान निर्भीक चरित्र और दूसरी ओर माँ की भाँति असीम ममता और स्नेह लेकर अवतरित हुए थे श्रीरामकृष्ण।

आन्दोलनका सामाजिक विन्यास

रामकृष्ण-भावान्दोलन को यद्यपि मुख्य रूप से रामकृष्ण मिशन ने ही आगे बढ़ाया है तथापि इसका मूल स्रोत श्रीरामकृष्ण की जीवनचर्या ही है। उनके दक्षिणेश्वर में रहने के समय विभिन्न सामाजिक स्तर के लोग उनके समीप आते थे और प्रकृत रूप में उस समय से ही इस आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। श्रीरामकृष्ण के निकट जो लोग आते थे विशेषकर उनके अनुरागीगण, उनमें सबका नाम नहीं प्राप्त होने पर भी, विभिन्न पुस्तकों में खोज करने पर हम लोग दो सौ से कुछ ही कम नाम पाते हैं। जातिगत स्तर के हिसाब से आनुमानिक स्वरूप मोटा-मोटी इस प्रकार है—ब्राह्मण २३.५ प्रतिशत, कायस्थ २६.५ प्रतिशत, सुवर्ण वणिक १६ प्रतिशत, वंद्य ५.५ प्रतिशत, तपशील जाति २४.५ प्रतिशत एवं अन्यान्य लोग ४ प्रतिशत। पेशा या कार्य की दृष्टि से इन लोगों का स्वरूप इस प्रकार है—छात्र १४ प्रतिशत, साधु और धर्म नेता ६.५ प्रतिशत, प्रथम श्रेणी की सेवा वृत्ति वाले ८ प्रतिशत, जमींदार ३ प्रतिशत, बुद्धि-जीवी १६ प्रतिशत, व्यवसायी १.५ प्रतिशत, शिल्पी ६.५ प्रतिशत, गृहवधू १५ प्रतिशत एवं अन्यान्य २ प्रतिशत।

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि मूलतः निम्न मध्यवित्त श्रेणी के लोग ही अधिकतर उनके पास जाते थे। जाति की दृष्टि से कायस्थों की संख्या ही अधिक थी, ब्राह्मण और तपशील जाति के लोग प्रायः समान संख्या में थे। स्मरण रखना होगा कि इन ब्राह्मणों में अधिक लोग ब्रह्मसमाजी थे, जिनमें विजयकृष्ण गोस्वामी, शिवनाथ शास्त्री, त्रैलोक्यनाथ सान्याल प्रमुख थे। भाटपाड़ा, दक्षिणेश्वर और कलकत्ता के हिन्दू ब्राह्मण लोग उनके समीप अधिक नहीं जाते थे। इसका कारण यह था कि शूद्राणी (रानी रासमणि) की नौकरी करने से श्रीरामकृष्ण अपनी 'जाति' खो चुके थे। दूसरी ओर अँग्रेजी शिक्षा का आलोक जिनके भीतर प्रवेश कर गया था उन्हीं ब्राह्म और अब्राह्मण हिन्दुओं का एक विराट् अंश उनके समीप जाता था। पेशागत दृष्टि से भी बुद्धिजीवी-समाज-जीवी लोग उनके अनुरागी थे। अतएव, कहा जा सकता है कि संख्या कम रहने पर भी जातिगत और पेशागत दृष्टि से समाज के सभी स्तरों के लोग उनके पास जाते थे। कट्टर रूढ़िवादी ब्राह्मणगण जो उनके पास नहीं जाते थे उसका कारण था श्रीरामकृष्ण का कट्टर रूढ़िवादिता से मुक्त चरित्र। विशेषतः शूद्राणी की नौकरी करना, अपना अहंकार मिटाने के लिए अपने सिर के बालों से मेहतर के घर का पाखाना साफ करना, जहाँ-तहाँ खा लेना आदि घटनाओं के कारण श्रीरामकृष्ण को वे लोग 'म्लेच्छ' ही समझते थे। फिर जमींदारी और बड़े लोग उन्हें भद्र दृष्टि से नहीं देख पाते थे। रानी

रासमणि को खुलेआम चाँटा मार देना, माथुर बाबू की जमींदारी से बाहर होकर प्रजा लोगों का कर माफ करने के लिए जोर करना, कई जमीदारों एवं भूस्वामियों के सम्बन्ध में प्रकट रूप से विरुद्ध मंतव्य देना आदि घटनाओं को उन लोगों ने भली दृष्टि से नहीं ग्रहण किया। जो माथुरबाबू उन पर इतनी श्रद्धा रखते थे वे भी उनके अवतारत्व पर बार-बार सन्देह प्रकट करते थे (भैरवी ब्राह्मणी द्वारा श्रीरामकृष्ण को अवतार घोषित करने पर उन्होंने अपना मन्तव्य देते हुए कहा था --'अवतार तो दस से अधिक नहीं हैं।" विचार सभा में पण्डितों द्वारा 'श्रीरामकृष्ण में अवतार के शास्त्रीय लक्षण हैं, ऐसा कहकर उसे खुले रूप में स्वीकार करने पर भी माथुरबाबू ने इस विषय को सहज भाव से नहीं ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण के अवतारत्व को जिन लोगों ने मुक्त कंठ से जोर देकर स्वीकार किया था वे थे चिनु शाँखारी (चूड़ी बेचनेवाली), भैरवी ब्राह्मणी और गिरीश घोष।)

१८९७ ई० को १ मई को रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई। मिशन के आरम्भ से ही जो लोग इस आन्दोलन से गम्भीर रूप में जुड़े थे उनमें श्रीरामकृष्ण के संन्यासी और गृही शिष्य एवं स्वामीजी के संन्यासी शिष्यों की सामाजिक पट-भूमिका देखी जाय (स्वामीजो के गृही शिष्यों में कई के नाम उपलब्ध नहीं हैं।) इन लोगों में विख्यात ४३ व्यक्तियों में २८ व्यक्ति ही संन्यासी थे। संन्यासी होने के पूर्व १८ व्यक्ति ही छात्र थे (१२ व्यक्ति कॉलेज के और ६ व्यक्ति स्कूल के) एक व्यक्ति लघु व्यवसायी, एक व्यक्ति घरेलू नौकर, ७ व्यक्ति नौकरी करते थे। (४ व्यक्ति गैर सरकारी और ३ व्यक्ति सरकारी कार्यालय में) और १ व्यक्ति संवाददाता थे। १५ गृही भक्तों में ४ व्यक्ति ऑफिस में नौकरी करते थे, ३ व्यक्ति डॉक्टर थे, १ व्यक्ति जमीन्दार; ३ व्यक्ति शिक्षक और २ व्यक्ति अभिनेता थे। यद्यपि कई राजे-महाराजे स्वामीजी के अनुरागी थे तथापि बेतड़ी के राजा और महीशपुर के राजा के अतिरिक्त अन्य राजाओं ने इस आन्दोलन में विशेष भाग नहीं लिया। वस्तुतः धनी व्यक्तियों की सहायता रामकृष्ण मिशन ने बहुत कम पायी है। कलकत्ता के प्लेग पीड़ितों के रिलीफ के लिए रुपयों के अभाव के कारण स्वामीजी ने बेलुड़ मठ की जमीन को बेच देना चाहा था, १९०१ ई० में मठ में प्रतिमा की दूर्गापूजा होने के उपरान्त १० वर्षों तक पूजा हुई थी दुर्गा के चित्र की, क्योंकि प्रतिमा खरीदने के लिए रुपये नहीं थे। बागबाजार में उद्‌बोधन के भवन-निर्माण कराने के समय सारदानन्द जी को काफी रुपये उधार लेने पड़े। वे रुपये उन्होंने पुस्तकों की बिक्री कर लौटाये। बेलुड़ मठ में उन दिनों भोजन-वस्त्र का काफी अभाव था -ये सारी घटनाएँ प्रमाणित करती हैं कि रामकृष्ण मिशन ने धनी व्यक्तियों का विशेष सहयोग-समर्थन नहीं पाया। इस अवस्था में वर्त्तमान समय में भी विशेष बदलाव नहीं आया है। १९८० ई० की एक रिपोर्ट में देखा जाता है कि मिशन के विराट् कर्म-यज्ञ में धन की जो वार्षिक आवश्यकता होती है उसका १९·७% पाया जाता है केन्द्रीय और विभिन्न राज्य सरकारों के अनुदान से, शुल्कों और चार्जों से १५.५%, बैंक से सूद ४·९%, मकान भाड़ा से २%, पुस्तकों आदि की बिक्री से ६·७%, एवं बाकी ५५·२% अर्थ का इन्तजाम होता है दान के माध्यम से (इसमें २·२% आता है विभिन्न दातव्य संस्थाओं से, विदेशी अनुरागियों से आता है ०·३% एवं ५२·७% आता है जन-साधारण के द्वारा खुदरा दान के माध्यम से।) वर्त्तमान समय में भारत के प्रथम श्रेणी के धनी और उद्योग-पतिगण रामकृष्ण मिशन को जो अर्थ-सहायता करते हैं वह काफी नगण्य है १% भी नहीं

है। उनलोगों में एक मात्र टाटा ही मिशन को कुछ दान देता है, वह भी केवल मिशन की जमशेदपुर शाखा को। समग्रगत रूप से कहा जा सकता है कि आरम्भ मे ही रामकृष्ण आन्दोलन में जनबल और अर्थबल एकत्र करते रहे हैं मध्यवित्त और निम्न मध्यवित्त श्रेणी के लोग ही।

●

देवलोक

—ब्रह्मलीन स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट।

नवम् परिच्छेद

महापुरुषजी के सेवक के रूप में

संघाध्यक्ष होने के बाद मठ-मिशन के काम-काज, भक्त-समागम, दीक्षाप्रार्थी एवं अन्यान्य विभिन्न स्तरों के लोगों के साथ मुलाकात और व्यक्तिगत बातचीत-परिचय में उनको इतना अधिक समय देना पड़ता था कि, यथासमय स्नान करके पंगत में बैठकर खाना उनके लिए असम्भव हो गया। इसलिए उस समय से दोनों समय उनका भोजन घर में जाकर देने की व्यवस्था की गयी। और भी ऐसे कुछ-कुछ काम थे जिनके लिए एक सेवक का विशेष प्रयोजन देखा गया। सब ओर से विचार करके एवं मठ-मिशन के क्रमशः बढ़ने वाले कामकाज के विषय में विचार करके, मठ के मैनेजर एवं पुराने साधुगणों ने तुरन्त महापुरुषजी के लिए एक सेवक नियुक्त करने का निश्चय किया एवं महापुरुषजी के मठाध्यक्ष होने के छः सात दिन बाद ही एक दिन प्रातःकाल सूर्य महाराज (स्वामी निर्वाणानन्द) मुझको साथ ले जाकर महापुरुषजी को बोले: 'महाराज, इसको अपनी सेवा में रखिए। आपको एक सेवक की बहुत आवश्यकता हो गयी है। हमलोगों का अनुरोध मान लीजिए।' महापुरुष जी ने तो पहले विस्मय प्रकट किया और कहा: 'मेरा ऐसा क्या कार्य, यही तमाखू सजाना, यह तो मैं स्वयं ही कर सकता हूँ। इसके लिए एक सेवक की क्या आवश्यकता? इसके अतिरिक्ति मठ का कामकाज भी तो है, वह तो मठ के अनेक कार्य करता है।' किन्तु सूर्य महाराज ने छोड़ा नहीं। उन्होंने बहुत समझाकर महापुरुषजी को राजी कर लिया एवं कहा: 'हम सभी कह रहे हैं कि वह आप के पास रहेगा। क्या कार्य करना होगा क्या नहीं करना होगा यह सब मैं कह दूँगा। मैं तो आपलोगों की सेवा के सम्बन्ध में कुछ जानता हूँ।' महापुरुषजी सूर्य महाराज को बहुत स्नेह करते थे क्योंकि वे राजा महाराज के सेवक थे। इसीलिए उनका अनुरोध काट नहीं सके। फिर भी वे बोले: 'मेरी और क्या सेवा? ठाकुर का कामकाज थोड़ा-थोड़ा रोज करे।' यही उनके प्रथम सेवक की नियुक्ति हुई। सूर्य महाराज ने सब कामकाज की बात मुझे समझा कर कह दिया एवं बीच-बीच में समाचार लेने लगे।

महापुरुषजी रोज तीन बजे प्रातः उठ कर हाथ-मुख धोकर कुछ देर बिस्तर पर बैठते एवं ठाकुर घर खुलने के साथ ही साथ मृगचर्म का

आसन बगल में लेकर मन्दिर जाते, और छः बजे के बाद लौट कर आते। मैं इसी समय के बीच घर द्वार साफ करके, बिस्तरा लपेट कर, गुड़गुड़ी में पानी बदल कर, कुछ चिलम तमाखू सजा कर एक कलके में टिकिया में आग लगा कर रख देता था। महापुरुषजी मन्दिर से लौट कर चुपचाप तमाखू पीते थे उस समय वे खूब अन्तर्मुख भाव में रहते थे। कुछ समय बाद मठ के साधु गण प्रणाम करने आते उसी समय मैं भी सबके साथ प्रणाम करता। वे सबका कुशल प्रश्नादि पूछते थे, मठ के कामकाज का भी निर्देश देते एवं ईश्वरीय प्रसगादि करते थे। वे अनेकों से साधन-भजन के सम्बन्ध में प्रश्न करते। किसी के आशीर्वाद चाहने पर प्राणखोल कर, कभी सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते थे। इस स्पर्श से सभी हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द और शान्ति का अनुभव करते।

महापुरुषजी इस समय चाय या काफी कुछ भी पीते नहीं थे। उस समय मठ में सारे दिन में ठाकुर को पांच आने की मिठाई भोग देने की व्यवस्था थी। उनको सारे दिन छोटा प्रसादी सन्देश दिया जाता था। वे एक प्रसादी सन्देश खाकर थोड़ा पानी पीते, दूसरा सन्देश सभी साधुओं के बीच बाँट देने के लिए कहते: 'बच्चों को थोड़ा न देकर क्या खा सकता हूँ। धीरे-धीरे भक्तों का समागम बढ़ने लगा। चिट्ठी पत्रादि वे तब तक स्वयं अपने हाथों लिखते थ। मेरा सबसे कठिन काम था महापुरुषजी का दोनों समय आहार और विश्राम की व्यवस्था करना। वे भक्तों का दुःख देखकर बहुत बार आहारादि की बात भूल जाते थे। खाने के घण्टे तक भक्त-समागम चलता था। भक्तों के आहार की व्यवस्था करके वे स्नान करने जाते-और जल्दी खाने बैठते। भक्तों को वे किसी भी प्रकार लौटाना नहीं चाहते थे।

राजामहाराज की स्मृति सभा :

देश के जनसाधारण, विशेषकर भक्तों ने, स्वामीब्रह्मानन्द को श्रद्धांजलि देने के लिए स्थान-स्थान पर स्मृति-सभा का आयोजन किया था। इसी कार्य के उपलक्ष्य में महाराज के जन्म स्थान वसीर-हाट की जनता द्वारा बुलाये जाने पर मठ के कुछ पुराने संन्यासियों के साथ महापुरुषजी १३ मई, (१९२२) महाराज के जन्मस्थान गये। इसी यात्रा में मुझे भी महापुरुषजी के साथ जाने का सुयोग मिला था। महाराज के जन्मस्थान का दर्शन करके वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उसी प्रसंग में उन्होंने महाराज के जन्म स्थान में एक मन्दिर और आश्रम स्थापना की इच्छा प्रकाश की। परंतु उसी समय यह प्रस्ताव कार्य में परिणत नहीं हुआ। आजकल भक्तों की चेष्टा से वहाँ एक धर्म-प्रतिष्ठान बन गया है।

१५ मई, वसीरहाट के विद्यालय के प्रांगण में उनके सभापतित्व में ब्रह्मानन्द स्मृतिसभा का एक विराट अधिवेशन हुआ। महापुरुषजी की उपस्थिति में इस अंचल के भक्तों के प्राणों में खूब उद्दीपन एवं उत्साह का संचार हुआ था। उनके निर्देशानुसार वसीरहाट में उनकी स्मृति की रक्षा के लिए एक दातव्य चिकित्सालय या धर्म प्रतिष्ठान स्थापना के लिए एक कमेटी गठित की गयी। इसके बाद वे संन्यासियों से घिरकर कृष्णनगर में एक दिन रुक कर १७ मई, को बलुड़ मठ वापस आ गये। दूसर रविवार, २८ मई को महापुरुषजी की विशेष इच्छा से महाराज के जन्मस्थान में ब्रह्मानन्द-स्मृति-उत्सव हुआ। शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे इस उत्सव में योगदान नहीं दे सके, किन्तु बलुड़ मठ से ग्यारह साधुओं को भेजा था।

बेलुड़ मठ समग्र संघ का मस्तिष्क :

संघाध्यक्ष होने के बाद मठ के संन्यासी ब्रह्मचारी, रसोइया-नौकर, गाय-बछड़ा, कुत्ता-

बिल्ली, पेड़-पौधे, बाग-बगीचा सब के ऊपर उनकी सतर्क और स्नेह दृष्टि थी। बेलुड़ मठ ठाकुर का संसार, ठाकुर को केन्द्र करके मठ सक्रिय और गतिशील था। महापुरुषजी ठाकुरजी के प्रतिनिधि, उस दायित्व के सम्बन्ध में वे सम्पूर्ण सचेत थे। एक दिन प्रातःकाल अपने घर में एकत्र सभी साधुओं को लक्ष्य करके, साधु जीवन के आदर्श के सम्बन्ध में वे बोले : 'देखो, हमलोगों के ठाकुर उदास चेहरा बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे, साधु लम्बा (उदास) चेहरा क्यों रखेगा ? खूब आनन्द में रहेगा। बेलुड़ मठ में जो रहते हैं, उनको आदर्श साधु होना पड़ेगा। बेलुड़ मठ ही सारे संघ का सिर है। सिर ठीक रहने से जिस प्रकार शरीर के सब अंग प्रत्यंग ठीक रहते हैं, उसी प्रकार बेलुड़ मठ के साधु यदि ठीक-ठीक ठाकुर के घर का साधु होगा तो संघ ठीक चलेगा। बेलुड़ मठ में जो हैं उनके ऊपर यहां बड़ा दायित्व स्वामीजी दे गए हैं। यहां जैसी शिक्षा मिलेगी उसी भाव से संघ के सब साधुओं का जीवन गठित होगा। सावधान, बाबा ? बेलुड़ मठ में रहना बहुत भाग्य की बात है। यहाँ हम लोगों के पास तुम लोग आदर्श साधु बना—यही मेरी आंतरिक इच्छा है। सारा संसार बेलुड़ मठ की ओर देख रहा है। यही बेलुड़ मठ युगधर्म प्रचार का प्रधान केन्द्र है तुम लोगों के ऊपर कितना बड़ा दायित्व है। तुम लोगों के माध्यम से लोग ठाकुर-स्वामीजी को समझेंगे। हमलोग और कितने दिन !'

साधुओं की सुख सुविधा की ओर महापुरुषजी की दृष्टि

महापुरुषजी विलासिता पसन्द नहीं करते थे। एकदिन प्रातः काल मठ के साधु लोग महापुरुषजी को प्रणाम करने आये थे। वे भी प्रसन्नमुख सभी के साथ बातचीत करते। एक साधु के पहनने का वस्त्र फटा और मैला था, महापुरुषजी को प्रणाम कर साधु जब वापस जाने लगे, तब उनकी दृष्टि उस फटे कपड़े पर पड़ी। वे बोले : हीरेन, तुम्हारा कपड़ा फट गया है और मैला हो गया है।...ठाकुर फटा व चिप्पक दिया कपड़ा या सिलाई दिया हुआ कपड़ा पसन्द नहीं करते थे' एवं मुझको थोड़ा दृढ़ स्वर में बोले, साधुओं को कपड़ा-लत्ता है या नहीं यह सब खोज खबर तुम लोग नहीं ले सकते ? अब से साधु लोगों की क्या आवश्यकता है यह जान लेना।' मैंने हारेन महाराज को उसी समय एक दस हाथ लम्बा नया कपड़ा दिया। वे प्रसन्न होकर महापुरुषजी को प्रणाम करके चले गये।

उस समय महापुरुषजी की सेवा का कुछ अधिक काम नहीं था, इसीलिए मुझको मठ के अन्यान्य कार्यों में लगाते थे। एक दिन मुझको बुलाकर बोले : 'देखो, आजकल मठ के बरामदे में ठीक झाड़ू नहीं लगता है। तुम कल से स्नान के पहले बरामदे में झाड़ू लगाना। उनकी आज्ञानुसार कुछ दिन मैंने झाड़ू लगाया था।

लेखक के आध्यात्मिक जीवन गढ़ने में महापुरुषजी का प्रयास

मेरे आध्यात्मिक जीवन का गुरु दायित्व उन्होंने लिया था एवं मुझे कल्याण पथ पर चालित किया था। कई बार मैं उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में उनके घर के सामने बैठा रहता था। एक दिन दरवाजा खोलकर बाहर आकर मुझसे सप्रेम बोले : 'तुम तो वहां बैठ-बैठ जप कर सकते हो या कथामृत पाठ कर सकते हो, सब समय तो कार्य रहता नहीं।' उस समय से जब भी समय मिलता उनके दरवाजे के बाहर बैठे-बैठे मन-ही-मन जप करता या कथामृत या स्वामीजी के ग्रन्थादि पढ़ता था। वे निर्देश देकर ही शान्त नहीं हुए – बीच-बीच में दरवाजा खोल कर देखते कि मैं क्या कर रहा हूँ या क्या पढ़ रहा हूँ। इसी प्रकार कई महीने के

बाद एकदिन उन्होंने हठात् दरवाजा खोलकर पूछा : क्या पढ़ रहे हो ?' मेरे स्वामीजी का कर्मयोग पढ रहा हूँ कहते ही वे बोले : 'उस दिन तो "कथामृत" पढ रहे थे आज स्वामीजी का कर्मयोग पढ रहे हो अवश्य ही सब ग्रन्थ अच्छे हैं, परन्तु इस प्रकार (Desultory Reading) (अस्त-व्यस्त पढ़ना) अच्छा नहीं है। जब जो विषय पढ़ोगे वह गम्भीर एकाग्रता के साथ पढ़ना चाहिए, यह किताब, वह किताब पढ़ने से किसी विषय में विशेष ज्ञान नहीं होता विचारधारा में गम्भीरता नहीं आती। और इससे तुम जो एक विषय में मन नहीं लगा पा रहे, यही समझ में आता है। खूब मनोयोग से दिन पर दिन एक ही विषय पढ़ना एवं उस विषय में गम्भीर चिन्तन करना. विचार करना, तभी तो वह मन में दृढ़ अंकित होगा। हम लोग जब गीता उपनिषद् पढ़ते थे, तब गीता का एक-एक श्लोक लेकर दिन पर दिन ध्यान करते थे। खूब मन देकर पढ़ो, और साथ ही साथ उस विषय की धारणा कर सको उसके लिए ठाकुर के पास प्रार्थना करो।'

× × × ×

महापुरुष जी का दीक्षा देना आरम्भ करनें के बाद मे मठ की दरिद्रता दूर होने लगी। हमलोगों के मठवास को प्रथम अवस्था में प्रत्येक साधु के लिए पाँच हाथ का एक टुकड़ा धोती निश्चित था। वह भी अनेक समय मिलता नहीं था। यहाँ तक कि अस्वस्थता में थोड़ा दूध या फल की भी व्यवस्था नहीं थी। सभी के लिए चाय को व्यवस्था नहीं थी। शनिवार-मंगलवार को पाँच आने की मछली के भोग की व्यवस्था थी। इसी प्रसाद को सभी आनन्दपूर्वक खाते थे। महापुरुष महाराज दीक्षा की कोई भी वस्तु यहाँ तक कि गुरुदक्षिणा भी स्वयं ग्रहण नहीं करते थे। सभी ठाकुर सेवा या साधु सेवा में खर्च होता था। उस युग में बहुत दारिद्र्य था परन्तु कोई असन्तोष का भाव नहीं था। संघ में स्थान मिलना ही साधु लोग अपना दुर्लभ सौभाग्य मानते थे। महापुरुषजी का जीवन भी खूब कठोरता पूर्ण था।

सेवा लेने में महापुरुषजी की अनिच्छा

क्रमशः ग्रीष्म ऋतु आ गयी। बेलुड मठ में प्रकाश या पंखा उस समय नहीं था। महापुरुषजी को सर्दी जल्दी लग जाती थी इसीलिए वे बाहर या गंङ्गा के किनारे सो नहीं सकते थे। इस तरफ बेलुड़ मठ के कुख्यात मच्छर। इसीलिए वे मच्छर दानी लगा कर घर में सोते थे। उनका घर पूर्व और दक्षिण की ओर से बन्द, घर में हवा नहीं जाती थी। वे किसी की सेवा लेना नहीं चाहते थे। मेरे थोडी देर पंखा मे हवा करने पर वे सो जाते थे यह देख कर मैं मसहरी गिरा कर चला आता था। एक दिन अर्द्ध रात्रि मैं पानी पीने के लिये उठा तो देखा कि वे स्वयं पंखा कर रहे हैं। मैं उनके घर में जाकर धीरे धीरे बोला : 'महाराज मैं थोड़ा पंखा करूँ।' वे बोले : 'नहीं, तुम सो जाओ। तुमको दिन के समय परिश्रम करना पड़ता है अभी थोडा ठंढा होकर आये हो. मैं सो जाऊँगा।' मैंने बाहर आकर बहुत देर खड़े होकर देखा कि वे पंखा कर रहे हैं और इधर-उधर कर रहे हैं। दूसरे दिन मैं मठ के मैनेजर महाराज के साथ परामर्श करके ठाकुर का प्रसादी एक ताल पत्ते का बड़ा पंखा लेकर रात्रि में महापुरुषजी की मसहरी के बाहर से दोनों हाथों से पंखा करने लगा। वे अच्छी तरह सोने लगे। अर्धरात्रि में उनकी नींद टूट जानें पर उन्होंने कहा 'तुम अभी भी हवा कर रहे हो ? जाओ, जाकर सो जाओ। अभी ठंढ़े हुए हो।' मैंने विवश होकर बड़ा पंखा रख कर बाहर आकर देखा कि वे हाथ पंखा चला रहे हैं। रात्रि के अंतिम प्रहर में दो अढ़ाई बजे नींद टूटने पर उन्होंने देखा कि मैं हाथ पंखा चला रहा हूँ यह देख कर वे थोड़ा विरक्त होकर

बोले : 'तू अभी भी सोये नहीं ! जाओ, जाओ, सो जाओ। इस प्रकार रतजगा करने से बीमार होने पर तुमको कौन देखेगा ?' विवश होकर मैं पंखा बन्द करके सोने जाता, किन्तु गरमी के कारण वे सो न पाते थे। इसी प्रकार गरमी का मौसम कट गया।

प्रेमधन

—यशपाल जैन

किसी गाँव में एक धनी रहता था। भौतिक दृष्टि से तो बहुत रईस था, तिजोरी उसकी रुपये-पैसों से, गोदाम उसका अनाज से भरा रहता था लेकिन हृदय उसका रोता था - उसकी जीभ पर कटुता राजती थी, आखों से हमेशा क्रोध टपकता था, नम्रता शब्द ही उसके लिए अपरिचित था, ऐसे स्वभाव के दुष्परिणाम आदमी का दामन पकड़ लेते हैं - उसका कोई सच्चा मित्र न था, दिन रात वह उदास और दुःखी रहता। डर के मारे उसके अधीन व्यक्ति उसके सामने हाथ बाँधे खड़े रहते लेकिन पीठ पीछे उसे बुरा-भला कहते।

एक बार उस गाँव में एक साधु पधारे। धनी भी उनके दर्शन करने गया। साधु के सामने उसने अपनी व्यथा-कथा सुनायी, अंत में बोला— महाराज, अब मुझे न तो यह जीवन, न यह धरती रास आते हैं, यहाँ के लोग भी सद्भावना से खाली हैं, केवल चापलूसी करने वाले बसते हैं यहाँ। अतः मैं यह बहुत जोरों से अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे जीवन में सचमुच आनन्द की एक बूंद तक नहीं है, सच्चा सुख मैंने कभी नहीं जाना। क्या आप मुझे कोई रास्ता सुझायेंगे ?

धनिक की बातें सुनकर मुस्कराते हुए साधु ने कहा—मित्र, उपाय तो बहुत सरल है, रास्ता सीधा है चूंकि तुम अपने दुःख के बारे में सचेतन हो इसलिए अगर चाहो तो जल्दी ही प्रसन्न और स्वस्थ रहने लगोगे।

पहली बार धनिक ने किसी के सम्मुख नम्रता दर्शायी। अनुनय-भरे स्वर में बोला— महाराज, तब तो जल्दी-से-जल्दी इसका उपाय कीजिए।

तब साधु ने एक दीपक मंगवाया। उसमें पानी भरकर धनिक से उसे जलाने को कहा। बार-बार कोशिश करने के बाद कुछ झुंझलाकर वह बोला— महाराज, पानी से कहीं दीये जलते हैं ? तेल के बिना इसकी बत्ती भला आग कैसे पकड़ेगी ? साधु बोला— तब फिर लाओ तेल और जलाओ इसे। तेल के आते ही क्षण भर में दीपक की लौ ने चारों तरफ प्रकाश फैला दिया।

साधु फिर बोले - मित्र, अब समझ रहे हो किस चीज का अभाव है। जब तक अपने हृदय की बाती को स्नेह के तेल से नहीं भिगोओगे तब तक भला किस तरह तुम्हारे घन के उन्माद का अंधकार भागेगा, अहंकार के बादल छटेंगे ? मैं जानता हूँ कि तुम्हारे लिए यह करना कठिन है लेकिन याद रखो कि अगर तुम अपने हृदय के दीये में स्नेह की बाती सुलगा सको तो न केवल इस गाँव में बल्कि धरती के जिस किसी कोने में पहुँच जाओगे हमेशा धनाढ्य और पूज्य बने रहोगे।

['पुरोधा' से साभार]

वेद

ब्रह्मचारी मोक्ष चैतन्य
बेलुड़ मठ

सनातन हिन्दू धर्म रूपी महाप्रासाद की मूल भित्ति है अनादि अनन्त अपौरुषेय वेद। वेद ही है भारतीय सभ्यता की मन्दाकिनी का मूल उत्स; जहाँ से सतत प्रवाहित होने वाली पावनधारा ने भारतीय चिन्तन, दर्शन, जीवन तथा समाज एवं साहित्य को आज तक अपने स्नेह-सिंचन से श्यामल एवं जीवन्त कर रखा है। मनु ने वेद को 'अखिल धर्ममूलम्' अर्थात् समस्त धर्मों का मूल माना है। वेद के ही तत्त्वों का विस्तार एवं व्याख्या अन्य सभी हिन्दू ग्रन्थों में की गयी है। इस प्रबन्ध में हम इस पवित्रतम ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

'वेद' शब्द का अर्थ

ज्ञानार्थक 'विद्' धातु के साथ 'अच्' प्रत्यय योग करने से 'वेद' शब्द निष्पन्न होता है। अतएव वेद शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ होता है—ज्ञान अर्थात् इन्द्रियातीत ज्ञान। जिन ग्रन्थों में ये इन्द्रियातीत ज्ञान लिपिबद्ध हैं, उन्हें भी प्रकारान्तर से वेद की संज्ञा दी गयी है।

चक्षु, कर्ण आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ एवं मन जिस राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते हैं उस अतीन्द्रिय राज्य का ज्ञान हमें एकमात्र वेद से ही प्राप्त होता है। यथा—परलोक तत्त्व, सृष्टि तत्त्व, आत्मतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व इत्यादि। इसीलिए याज्ञवल्क्य ऋषि ने लिखा है -

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

—जो प्रत्यक्ष के अगोचर, अनुमान के अतीत, मनुष्य के ससीमज्ञान के उस पार, अर्थात् जो पार्थिव किसी भी प्रमाण की सहायता से नहीं जाना जा सकता है वह अतीन्द्रिय ज्ञान वेद से प्राप्त होता है।

वेद की विविध संज्ञाएँ

श्रुति, त्रयी, छन्दस् आगम आदि वेद की कई संज्ञाएँ हैं। ग्रंथाकार में लिपिबद्ध होने के पूर्व तक गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा श्रवण क्रिया के माध्यम से संरक्षित होने के कारण वेद को 'श्रुति' कहते हैं। पूज्यपाद आचार्य शंकर आदि वेदान्ताचार्यों ने साधारणतः श्रुति शब्द का ही व्यवहार किया है। 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग व्याकरणाचार्य पाणिनी ने अपने व्याकरण सूत्र में किया है। वेद को त्रयी' संज्ञा क्यों दी गयी है, इसके बारे में विद्वानों के बीच मतभेद हैं। वेद चार हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। कुछ विद्वानों के अनुसार इनमें से प्रथम तीन वेदों का ही यज्ञ के साथ सम्बन्ध होने के कारण वेद के लिए 'त्रयी' शब्द का प्रयोग हुआ है। अन्य विद्वानों के अनुसार वेद में तीन प्रकार के मन्त्र पाये जाते हैं, इसीलिए वेद की एक संज्ञा 'त्रयी' है। एक और मतानुसार अथर्ववेद को बहुत बाद में वेद की मर्यादा प्राप्त हुई; इसके पहले तीन ही वेद थे, इसीलिए वेद को 'त्रयी' कहा जाता था।

त्रिविध मन्त्र समूह

वेद में तीन प्रकार के मन्त्र पाये जाते हैं। वे हैं – ऋक्, साम एवं यजुः। आचार्य जैमिनी ने

इस त्रिविध मन्त्रों की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं। 'तेषाम् ऋक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्था,—वेद के जिन मन्त्रों में अर्थानुसार छन्द एवं पाद व्यवस्था है, वे मन्त्रसमूह 'ऋक्' कहलाते हैं। 'गीतिषु सामाख्या'—जिन ऋक् मन्त्रों को गाया जा सकता है उसे 'साम' कहते हैं। 'शेषे यजुः शब्द' —ऋक एवं साम मन्त्रों के अलावे जो मन्त्र हैं उन्हें यजुः संज्ञा दी गयी है। उनमें गद्य एवं पद्य दोनों प्रकार के मन्त्र हैं।

चतुर्विध वेद

वेद चतुर्विध हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। वेदों का नामकरण त्रिविध मन्त्रों की संख्या के आधार पर किया गया है। जिस वेद में ऋक् मन्त्रों की संख्या अधिक है, उसे ऋग्वेद की संज्ञा दी गयी है। इसी तरह जिस वेद में साम मन्त्रों की संख्या अधिक है, उसे सामवेद तथा जिसमें यजुः मन्त्रों की अधिकता है उसे यजुर्वेद कहा गया है। यजुर्वेद पुनः कृष्णयजुर्वेद एवं शुक्ल यजुर्वेद नामक दो प्रधान शाखाओं में विभक्त है। अथर्ववेद में इन्द्रजाल सम्बन्धी मन्त्रादि संग्रहीत है। अथर्वन् ऋषि ने इन मन्त्रों का संकलन किया था, इसीलिए इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा। सर्वप्रथम वेद अखण्ड था। महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने इसे चार भागों में विभक्त करके यथाक्रम से ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद संज्ञाएँ दी हैं। इसलिए उनका नाम वेद व्यास पड़ गया।

वेद का अन्तर्विभाग

प्रत्येक वेद को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जाता है—मन्त्र एवं ब्राह्मण। इसी विभाग को ध्यान में रखते हुए कात्यायन एवं आपस्तम्ब ने वेद की निम्नलिखित परिभाषा दी है: "मन्त्र ब्राह्मणयोवदनाम्धेयम्" अर्थात् मन्त्र एवं ब्राह्मण मिलकर वेद कहलाते हैं। सायनाचार्य ने भी यही परिभाषा दुहराई है—"मन्त्र ब्राह्मणात्मक शब्द राशि र्वेदः।" ब्राह्मण भाग के अन्तिम अंश को आरण्यक एवं आरण्यक के शेषांश को उपनिषद् कहा गया है। अतएव कुल मिलाकर वेद को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्।

मन्त्र विभाग अथवा संहिता

मन्त्र का तात्पर्य वेदोक्त सूक्त, स्तव, स्तुति, आशीर्वचन, प्रार्थना आदि से है। वेदों के मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं यथा ऋग्वेद संहिता, सामवेद संहिता, यजुर्वेद संहिता एवं अथर्ववेद संहिता। संहिता का अर्थ है 'मन्त्रों का संग्रह।' आर्य पुरुषों के धार्मिक तथा दार्शनिक आदर्शों की प्रथम झलक संहिताओं में पायी जाती है।

ब्राह्मण भाग

ब्राह्मण भाग का तात्पर्य, प्रधानतः मन्त्र के सम्बन्ध में विविध आलोचना, विविध यज्ञों की प्रक्रियाओं का विवरण, मन्त्रों का यज्ञ में विनियोग, देवता, यज्ञफलनिष्ठ, आलोचना आदि से है। अतएव यज्ञ सम्बन्धी चर्चा वेद के जिस अंश में है, वही ब्राह्मण कहलाता है। यह गद्याकार में लिपिबद्ध है। 'ब्राह्मण' शब्द की भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति एवं भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की गयी है। 'ब्रह्मन्' शब्द से ब्राह्मण' शब्द निष्पन्न हुआ हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यहाँ 'ब्रह्मन्' शब्द का अर्थ ब्राह्मण पुरोहित है। यह सम्पादन करना ब्राह्मण पुरोहितों का ही कार्य था। अतएव ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा अनुष्ठेय यज्ञों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी वेद के जिस भाग में पायी जाती है उसे 'ब्राह्मण' कहते हैं। यह व्याख्या युक्तिसंगत जान पड़ती है। आपस्तम्ब ने ब्राह्मण ग्रन्थ की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी है—"कर्मचोदना ब्राह्मणानि'—अर्थात् यज्ञादि क्रिया-काण्डों का विधान जिस ग्रन्थ में है वही ब्राह्मण ग्रन्थ है।

ब्राह्मण ग्रन्थ केवल यज्ञ की प्रक्रिया पञ्जी नहीं है, बल्कि प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण तथ्य भी उसमें लिपिबद्ध हैं। जातिभेद, जीविका, शिक्षा, विवाह-संस्कार, मृतदेह संस्कार, भौगोलिक पटभूमिका, कृषि, वाणिज्य, नृत्यगीतविद्यादि, ललितकला राजनीति, युद्धनीति, स्थापत्य विद्या, भाषा तत्त्व, साहित्य, शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों की उत्पत्ति आदि बहुविध विषयों की जानकारी हमें ब्राह्मण ग्रन्थों से प्राप्त होती है।

आरण्यक

विद्वानों के मत में वैदिक युग के आर्य पुरुषों का मन जब ब्राह्मणग्रन्थोक्त याग-यज्ञादि कर्म-काण्डों से हटकर ज्ञानयोग की ओर आकृष्ट हुआ तभी आरण्यक ग्रन्थ की उत्पत्ति हुई। द्रव्ययज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ की प्रधानता आरण्यकों में देखी जाती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित याग-यज्ञों के स्थूल अर्थों का परित्याग कर आरण्यक ग्रन्थों में उनकी आध्यात्मिक व्याख्या की गयी है। उदाहरणार्थ कौषीतकि आरण्यक का 'दशम अध्याय बाह्य-क्रियाकांड बहुल "अग्निहोत्र' यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या मात्र है। मनुष्य शरीर-स्थित प्राण एवं अपान वायु को आह्वनीय तथा गार्हपत्य अग्नि-कुण्ड माना गया है तथा अग्निहोत्र के दूध, समित्, आहुति आदि के सम्बन्ध में कहा गया है—

'श्रद्धा ही दूध है, वाक्य ही समित् है, सत्य ही आहुति है तथा प्रज्ञा ही आत्मा है। इसे 'आध्यात्मिक अन्तर अग्निहोत्र' की संज्ञा दी गयी है। अतएव बाह्ययज्ञ आन्तर्यज्ञ में रूपान्तिरित हो गया है। आरण्यक में बहुविध उपासना का विधान है।

आरण्यक ग्रन्थों में वर्णित उपासनादि विधाओं की शिक्षा-दीक्षा साधारणतः लोकालयों से दूर अरण्यों में दी जाती थी। इसीलिए वेद के जिस भाग में ये विद्याएँ लिपिबद्ध हैं उसे आरण्यक कहा जाता है। 'अरण्ये उक्तमिति आरण्यकम्, अर्थात् अरण्य में जो उक्त (उपदिष्ट) हो उसे आरण्यक कहते हैं।

उपनिषद्

आरण्यकों में जिस ज्ञानयोग एवं अध्यात्म विद्या की सूचना है, उपनिषदों में उसी की पराकाष्ठा है। सृष्टि तत्त्व, आत्मा-अनात्मा विचार, ब्रह्म एवं मोक्ष आदि तत्त्वों की आलोचना उपनिषदों में की गयी है। आचार्य शंकर ने कठोपनिषद् भाष्य की भूमिका में उपनिषद् शब्द की निम्नलिखित व्याख्या की है। 'सद् धातु के साथ 'उप' एवं 'नि' उपसर्ग तथा 'क्विप्' प्रत्यय योग करने से उपनिषद् शब्द निष्पन्न होता है (उप—नि+सद्+क्विप्=उपनिषद्।) 'सद्' धातु का अर्थ होता है—जीर्ण करना, नाश करना एवं गमन। 'नि' का अर्थ है 'निश्चित रूप से' तथा 'उप' का अर्थ है 'निकट'। अविद्या या अज्ञान को निश्चित रूप से नाश करके जो विद्या मुमुक्षु जीव को परब्रह्म के निकट ले जाती है उसे उपनिषद् कहते हैं।' इसे परा विद्या अथवा ब्रह्म विद्या भी कहते हैं। वेद के जिस भाग में पराविद्या लिपि बद्ध हैं उन्हें भी प्रकारान्तर से उपनिषद् कहते हैं। अतएव उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ हुआ परब्रह्मप्राप्ति साधन रूप परविद्य एवं गौण अर्थ हुआ उपनिषद् नामक ग्रन्थराशि जिसमें उक्त विद्या निहित है। उपनिषद् को वेदांत' भी कहते क्योंकि साधारणतः उपनिषद् वेद का अंतिम हैं भाग है एवं इसमें वैदिक ज्ञान की पराकाष्ठा है।

दो सौ से अधिक उपनिषदें उपलब्ध हैं जिनमें अधिकांश आधुनिक हैं। आचार्य शंकर ने निम्नलिखित तेरह उपनिषदों को प्रामणिक माना है—

ऐतरेय, कौषीतकि, छान्दोग्य, केन, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, कठ, महानारायण, ईश, श्वेताश्वेत, मुण्डक, प्रश्न एवं माण्डूक्य।

कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि वेद के मन्त्र एवं ब्राह्मण भागों का संबंध वैदिक याग-यज्ञादि क्रिया काण्डों से है जबकि आरण्यक एवं उपनिषद का विषय वस्तु ज्ञान है। इसीलिए मन्त्र एवं ब्राह्मण भाग को कर्मकाण्ड तथा आरण्यक एवं उपनिषद् भाग को ज्ञानकांड कहा जाता है। कर्मकांड वैदिक याग-यज्ञों का वर्णन करता है जबकि ज्ञानकाण्ड आत्मा-परमात्मा के तत्त्वों का निरूपण करता है। अर्थात् कर्मकाण्ड से धर्मतत्त्व एवं ज्ञानकाण्ड से ब्रह्मतत्त्व को जानकारी प्राप्त होती है। इसलिए कहा गया है – "धर्मब्रह्मणी वेदैकवेद्यौ।"

कर्मकाण्ड प्रधान ब्राह्मणग्रन्थों एवं ज्ञानकांड प्रधान उपनिषदों का अवलम्बन करके दो प्रधान भारतीय दर्शनों का उद्भव हुआ। जैमिनी ऋषि ने ब्राह्मण भाग का अवलम्बन करके पूवमीमांसा दर्शन की रचना की। इसे कर्ममीमांसा अथवा धर्ममीमांसा भी कहते हैं। विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों में आपात दृष्टि से जो विरोध दिखते हैं उनका समन्वय इस दर्शन में किया गया है। उपनिषद् का आधार मानकर उत्तरमीमांसा दर्शन की रचना बादरायण ऋषि ने की है। इस दर्शन का दूसरा नाम ब्रह्ममीमांसा अथवा वेदान्त दर्शन है। विभिन्न उपानषदों के वाक्य-समूहों में जो आपात दृष्टि से विरोध मालूम पड़ते हैं, उनका समाधान एवं समन्वय वेदांत दर्शन में किया गया है। वेदान्त दर्शन का एक और नाम ब्रह्मसूत्र भी है।

वेदांत एवं हिंदू धर्म

वेदांत अथवा उपनिषद् ही सनातन हिन्दू धर्म का मुख्य आधार है। हिन्दू धर्म के तीन प्रधान स्तम्भ हैं—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भगवत् गीता। एक साथ उन्हें प्रस्थान-त्रयी कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषदों का सार-संग्रह है। इसीलिए गीता महात्म्य में कहा गया है—

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दन ३।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥"

अतएव हम देखते हैं कि सनातन हिन्दूधर्म का मुख्य आधार उपनिषद ही है। इसीलिए हिन्दूधर्म को वेदान्त धर्म एवं हिन्दुधर्मावलम्बी को वेदान्ती कहा जाता है। हिन्दूधर्म में कोई भी मतवाद तभी स्वीकृत होता है जब वह वेदान्त पर आधारित होता है। यही कारण है कि अद्वैतवाद के प्रतिष्ठाता आचार्य शंकर, विशिष्टाद्वैत के प्रतिष्ठाता रामानुजाचार्य एवं द्वैतवाद के प्रतिष्ठाता माध्वाचार्य तथा अन्यान्य आचार्यों ने अपने-अपने मतवादों की प्रतिष्ठा के लिए प्रस्थान-त्रयी के ऊपर भाष्यों की रचना की है एवं यह दिखाया है कि उनके मतवाद वेदांत-सम्मत हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार भगवान श्रीरामकृष्ण देव का जीवन एवं उपदेश वेदांत के ऊपर सर्वश्रेष्ठ भाष्य है।

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पी य र ले स

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०० ०६९

भारत की बृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।